भा० दि० जैन संघ पुस्तकमाला का नौवाँ पुष्प

नमस्कार-महामन्त्र

लेखक

श्री पं० कैलाशचंद्र सिद्धांतशास्त्री

आचार्य

श्री स्याद्वाद महाविद्यालय, काशी

प्रकाशक

भारतीय दिगम्बर जैन संघ

मूल्य साढ़े दस आने

श्री पंच नमस्कार मन्त्र

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं ।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं ॥

इन पवित्र वाक्योंको जैनागम में श्री पञ्च नमस्कार महामन्त्र कहते हैं। जैनधर्मको मानने वाले जितने भी अवान्तर सम्प्रदाय है, सभी सम्प्रदाय इस महामन्त्रको न केवल मानते हैं किन्तु सभीकी श्रद्धा और भक्ति इस मन्त्रके प्रति समान है, सभी इसे महामन्त्र या मूल मन्त्रके रूपमें स्वीकार करते हैं और अत्यन्त आदरके साथ प्रति दिन इसका स्मरण, जप और ध्यान आदि किया करते हैं। सबसे प्रथम बच्चोंको इसी मन्त्रकी दीक्षा दी जाती है। उन्हें यही मन्त्र कण्ठस्थ कराया जाता है। ऐसे जैन स्त्री-पुरुष और बच्चे विरले ही होंगे जिन्हें यह महामन्त्र कण्ठस्थ न हो। जैसे ब्राह्मण समाजमें यह कहावत प्रचलित है कि जिसे गायत्री मन्त्र याद नहीं, वह ब्राह्मण ही नहीं, वैसे ही जैनोंमें भी यह बात प्रचलित है कि जिसे नवकार (नमस्कार) मन्त्र याद नहीं वह कैसा जैन ? यह तो उसका मूलमन्त्र है और मूल मन्त्र तो प्रत्येककी जिह्वापर होना ही चाहिये।

माहात्म्य–

जैन शास्त्रोंमें इस मन्त्रका बड़ा माहात्म्य बतलाया गया है। यही वजह है जो जैनोंमें इसका इतना अधिक प्रचार और प्रसार है तथा इसके प्रति जैनोंकी इतनी अधिक श्रद्धा और भक्ति है।

अनेक शास्त्र इसकी महिमा और गुण-गानसे भरे हुए है। लौकिक और परलौकिक कोई कार्य्य ऐसा नहीं है जो इस महा-मन्त्रकी आराधनाके द्वारा सफलता पूर्वक किया न जा सके अथवा इसके आराधनासे जिसमें सफलता प्राप्त न की जा सके। जैसा कि कहा है—

मन्त्रं संसारसारं त्रिजगदनुपमं सर्वपापारिमन्त्रं,
संसारोच्छेदमन्त्रं विषमविषहरं कर्मनिर्मूलमन्त्रम्।
मन्त्रं सिद्धिप्रदानं शिवसुखजननं केवलज्ञानमन्त्रं
मन्त्रं श्रीजैनमन्त्रं जप जप जपितं जन्मनिर्वाणमन्त्रम्॥

अर्थात्—'यह नमस्कार मन्त्र संसारमे सारभूत है, तीनो लोकोंमे इसकी तुलनाके योग्य दूसरा कोई मन्त्र नहीं है, समस्त पापोंका यह शत्रु है, संसारका उच्छेद करने वाला है, भयकरसे भयकर विषको हर लेता है, कर्मोंको जड़ मूलसे नष्ट कर देता है, इसीसे सिद्धि-मुक्तिका दाता है, मोक्ष सुखका और केवल ज्ञानका उत्पन्न करने वाला है। अतः इस मन्त्रको बार-बार जपो, क्योंकि यह जन्म-परम्पराको समाप्त कर देता है'।

और भी कहा है—

आकृष्टिं सुरसम्पदां विदधते मुक्तिश्रियो वश्यता-
मुच्चाटं विपदां चतुर्गतिभुवां विद्वेषमात्मैनसाम्।
स्तम्भं दुर्गमनं प्रति प्रयततो मोहस्य सम्मोहनं,
पायात् पञ्चनमस्क्रियाक्षरमयी साराधनादेवता॥

अर्थात्—'यह मन्त्र देवोंकी विभूतिको आकृष्ट करता है, यानी जो इसका जप करता है उसे देवगतिकी प्राप्ति होती है, मुक्ति रूपी लक्ष्मीको अपने अधीन करता है, चारो गतियोमे

होनेवाली विपत्तियोंका नाश कर डालता है, आत्माके पापोंका तो शत्रु है, और मोहका समोहन करनेवाला है। अतः वह पञ्च नमस्कारात्मक अक्षर रूप आराधना देवता हमारी रक्षा करे।'

उक्त दो श्लोकोंसे इस महामन्त्रकी अतुल शक्तिका परिचय मिल जाता है। खेद है कि ऐसे शक्तिशाली और सिद्धिदाता मन्त्रका जितना प्रचार होना चाहिये था उतना प्रचार नहीं है, तथा जिनमें प्रचार है वे लोग भी उसके विषयसे पूरी तरह परिचित नहीं हैं। अतः सभी आवश्यक और उपयोगी दृष्टिसे प्रकृत मन्त्रपर प्रकाश डालनेका प्रयत्न किया जाता है जिससे मन्त्रसे परिचित सज्जन अपनी त्रुटियोंको दूर करके और अपरिचित सज्जन उसका परिचय प्राप्त करके आत्महितके साथ साथ सांसारिक सुख भी प्राप्त कर सकें और व्यर्थकी ऋद्धि-सिद्धियोंके चक्करमें पड़कर अपना अनिष्ट न कर बैठें। सबसे प्रथम मन्त्र शास्त्रकी दृष्टिसे इसपर प्रकाश डाला जाता है।

मन्त्रशास्त्रकी दृष्टिसे—

जिसका पाठ करने मात्रसे कार्य सिद्ध हो उसे मन्त्र कहते हैं। और जिसको जप हवन वगैरह करके सिद्ध करना पड़ता है उसे विद्या कहते हैं। जैन ग्रन्थोंमें विद्या और मन्त्रमें यही भेद बताया है। ऐसा भी कहा जाता है कि जिसकी अधिष्ठातृ देवता स्त्री होती है वह विद्या है और जिसका अधिष्ठातृ देवता पुरुष होता है वह मन्त्र है। विद्यानुवाद नामके पूर्वमें अनेक विद्याओं और मन्त्रोंके होनेका वर्णन शास्त्रोंमें पढ़नेमें आता है। खेद है कि इस युगमें ये विद्याएँ लुप्त हो गई हैं और बहुतसे आधुनिक शिक्षित आज उनपर विश्वास नहीं करते। फिर भी खोजसे पता चलता है कि प्राचीन भारतमें मन्त्र तन्त्रवादियोंका बहुत जोर था और उनमें कितने ही सच्चे साधक भी थे। किन्तु उसके दुरुपयोगसे

अथवा मन्त्र तन्त्रकी ओटमें ठग विद्याका आश्रय लेनेसे यह विद्या बदनाम होनेके साथ ही साथ लुप्त हो गई और समझदार लोगोंकी उसपरसे आस्था उठ गयी।

जैन धर्म और मन्त्र शास्त्र—

एक समय बौद्ध सम्प्रदायमें इस विद्याका बड़ा प्रचार था। विद्वानोंकी खोजसे ज्ञात हुआ है कि पांचवींसे दसवीं शती तक पाँच सौ वर्षोंमें लगभग अढ़ाई हजार छोटे मोटे ग्रन्थ मन्त्र विद्यापर बौद्ध सम्प्रदायमें रचे गये थे। बौद्ध लोग मन्त्र तन्त्रके इतने अभ्यासी हो गये थे कि बात बातमें उसका उपयोग करते थे और सब कुछ देवताओंपर छोड़कर चैनकी बंसी बजाते थे। आज भी तिब्बतके बौद्धलामाओंका समय मन्त्र रटते रटते बीतता है। किन्तु मन्त्रपाठ करते करते मुह दुखने लगता है इसलिए उन्होंने पीतल और जस्तेकी छोटी बड़ी फिरकियाँ तैयार कर ली हैं। एक कागजके ऊपर प्रार्थनाका मन्त्र लिखकर और उसे लपेट कर वे इन फिरकियोंमें रख देते हैं। फिर उन्हें हाथमें घुमाते हैं। जितनी दफा यह फिरकिनी घूमती है उतनी बार उन मन्त्रोंका जाप हुआ माना जाता है। और उसका पुण्य भी लामाओंको बिना झंझट मिल जाता है। बड़े बड़े लामाओंकी फिरकियाँ भी बड़ी बड़ी होती हैं। कहीं-कहीं तो पवन चक्कियोंसे प्रार्थना मन्त्रोंका काम लिया जाता है। इन पवन चक्कियों या पनचक्कियोंपर बहुतसे मन्त्र लिखे रहते हैं और पानी या वायु इन प्रार्थना मन्त्रोंको चलाकर लामाओंकी ओरसे प्रार्थनाका काम करते रहते हैं। बिना हाथ पैर हिलाये पुण्य प्राप्तिका कितना सरल उपाय खोज निकाला है?

कुछ विद्वानोंका मत है कि बौद्धोंके प्रभावके कारण ही जैनोंमें मन्त्रसाहित्य रचा गया है, किन्तु यह मत भ्रम-पूर्ण है, क्योंकि जैन साहित्यसे यह प्रगट है कि जैनाचार्य मन्त्र विद्यासे पहलेसे

ही सुपरिचित थे जैसा कि विद्यानुवाद पूर्वके उल्लेख स्पष्ट है। किन्तु यह बात सत्य है कि जिस कालमे भारतमे मन्त्र-तन्त्रवादका प्राधान्य था उस कालके प्रभावसे जैन भी अछूते नहीं रहे है और उन्होंने भी उस ओर विशेष ध्यान देकर अपने मन्त्र साहित्यको पल्लवित और पुष्पित किया है। इसका कारण यह भी हो सकता है कि मानव समाज स्वभावसे ही चमत्कारोंका भक्त होता है। उसे थोड़ासा भी अलौकिक चमत्कार दिखलाकर एक इन्द्रजालिया भी मोहित कर लेता है फिर मन्त्र-तन्त्र वादियोंका तो कहना ही क्या है? अतः चमत्कारप्रिय जनताको चमत्कारोंके चक्करमे पड़कर पथभ्रष्ट होनेसे बचानेके लिये या जैन मन्त्र साहित्यका प्रभाव दर्शानेके लिये जैनाचार्योंको भी उस ओर अपना उपयोग लगाना पड़ा हो तो कोई आश्चर्य नहीं है।

किन्तु यह स्पष्ट है कि जैन गुरुओंका इस विद्याके प्रति वैसा आदरका भाव कभी नहीं रहा जैसा बौद्धों या शाक्तो वगैरहमे रहा है। उन्होंने इसका अभ्यास अवश्य किया किन्तु उसका उपयोग जिनशासनकी रक्षामे ही किया। लौकिक सिद्धियोंके चमत्कारमे वे कभी भी नहीं पडे। और यदि किसी साधुने इस मार्गका अवलम्बन लिया भी तो उसे दण्डका भागी होना पड़ा। साधारण साधुओंकी बात तो जाने दीजिये, श्वेताम्बराचार्य स्थूलभद्र जैसे प्रभावशाली स्थविरको बिना आवश्यकताके अपनी मन्त्र शक्तिका प्रयोग करनेके कारण दण्डका भागी होना पड़ा था।

इस विषयमे इतना कड़ा प्रतिबन्ध होनेका कारण यह है कि जैन धर्मका मुख्य लक्ष्य मोक्ष है। और मोक्षका अभिलाषी मुमुक्षु एक वीतरागी जिनेन्द्र देवके सिवा इष्ट अनिष्टकर सकनेकी शक्ति रखनेवाले रागी द्वेषी देवताओंको उपासना कभी भी नहीं करता। यदि वह ऐसा करे तो फिर वह मोक्षाभिलाषी नहीं रहता।

इतना ही नहीं, मोक्षकी प्राप्तिकी अभिलाषासे आत्म साधना करते हुये यदि अनायास उसे कोई ऋद्धि सिद्धि प्राप्त हो भी जावे तो भी वह उस ओरसे उदासीन होकर अपने लक्ष्यकी ओर ही दृष्टि रखता है, भूलकर भी उनकी ओर आकृष्ट नहीं होता; क्योंकि ये लौकिक ऋद्धिसिद्धियाँ मोक्षकी साधक नहीं होतीं, उल्टी बाधक ही होती हैं। उदाहरणके लिये आजसे कुछ वर्ष पहले जब भारत परतन्त्र था तो विदेशी सरकार सदा इस बातके लिये सचेष्ट रहती थी कि जो भारतको स्वतन्त्र करनेके आन्दोलनमें प्रमुख भाग लेते उनको सरकारी पदों और पदवियोंका प्रलोभन देकर अपनी ओर मिला ले। और इस तरह उन्हें उस कार्यसे विमुख कर दे जिसके करनेका उन्होंने व्रत लिया था। फलत: अनेक अच्छे देशनेता सरकारके चगुलमें फस गये और उसीके गीत गाने लगे। जब महात्मा गांधीने इस क्षेत्रमें पदार्पण किया तो उन्होंने इन सरकारी हथकण्डोंसे बचनेके लिये सरकारी पदों और पदवियोंका बायकाट करना आवश्यक समझकर उनपर कड़ा प्रतिबन्ध लगाया। तब कहीं जाकर देश भक्तोंकी निष्काम साधनाके फलस्वरूप भारत स्वतन्त्र हुआ। इसी तरह जो आत्माको सांसारिक कर्म बन्धनोंसे मुक्त करनेका सदुद्देश्य लेकर साधनाके पथपर उतरता है उसका ध्यान एकमात्र अपने लक्ष्यकी ओर ही रहता है, उसीके लिये वह सतत प्रयत्नशील रहता है। अपनी इस कठोर साधनाके फलस्वरूप यदि उसे कोई ऋद्धि-सिद्धि अनायास मिल जाती भी है तो उसे वह ऐसा ही समझता है जैसा सच्चा देशभक्त सरकारी पदोंको समझता था। वह जानता है कि इनके चक्करमें पड़नेसे मैं लक्ष्य भ्रष्ट हो जाऊँगा, अतः इन झूटे प्रलोभनोंसे मुझे बचना ही चाहिये। बस वह उनकी रत्ती भर भी परवाह न करके आगे बढ़ता चला जाता है और अन्तमें उस सिद्धिको प्राप्त करता है जिसे प्राप्त करके फिर कुछ प्राप्त करनेकी अभिलाषा ही जाती

रहती है। अतः जैन धर्ममें एक साधुकी तो बात ही क्या, एक सच्चे ज्ञानी श्रावककी दृष्टिमें भी लौकिक ऋद्धि-सिद्धियोंका कोई महत्त्व नहीं है और वह उनकी बिलकुल भी परवाह नहीं करता।

किन्तु सभी श्रावक इतने ज्ञानी और दृढ़ निश्चयी नहीं होते, उन्हें परलोकके साथ इस लोककी भी अनेक चिन्ताएँ सताती हैं। आज घरमें कोई बीमार है, तो कलको एक मुकदमा लग गया है, परसों व्यापारमें हानि हो गई है, आदि अनेक कठिनाइयाँ उन्हें घेरे रहती हैं, और वे उनसे छुटकारा पानेके लिये लालायित रहते हैं। ऐसे कठिन समयमें यदि उनको कोई तन्त्र मन्त्र बतला देता है तो वे उसके भक्त बन जाते हैं और उसे ही अपना रक्षक समझ बैठते हैं। ऐसे मनुष्योंकी मनस्तुष्टिके लिये तन्त्र-मन्त्र बड़े सहायक होते हैं, उससे उन्हें सान्त्वना मिलती है, उनकी घबराहट दूर होती है, उनमें दृढ़ता और विश्वासकी भावनाका उदय होता है और कदाचित उसकी आराधनासे यदि उनका काम बन जाता है तब तो कहना ही क्या है?

असलमें साधारण जनताका दैवी शक्तिपर अटल विश्वास है और वह अपनी सांसारिक कामनाओंके वशीभूत होकर टोटके करनेवाले मनुष्योंके फन्देमें फँस जाती है। आजके इस युगमें भी पुत्रकामनासे न जाने कितनी स्त्रियाँ ठगों और बदमाशोंके फन्देमें पड़कर अपना सर्वस्व गवाती हैं, कितनी मस्जिदों, मठों और पीरगाहोंमें जाकर बेवकूफ बनती हैं और कितने ही समझदार मनुष्य तक धोखा खा जाते हैं। ऐसे नासमझ मनुष्योंको दुनियाके जाल फरेबोंसे बचानेके लिये सच्चे मन्त्रों और मान्त्रिकोंका उपयोग आवश्यक है। उसके बिना उन्हें सुमार्गपर नहीं लाया जा सकता। अतः जैनधर्ममें मन्त्र शक्ति और मन्त्र शास्त्रोंके होते हुये भी न तो कभी उनकी बाढ़ आई और न कभी सामान्य

रूपसे उनका दुरुपयोग ही किया गया। हां, व्यक्ति विशेषने ऐसा किया हो तो वह बात जुदी है।

मन्त्र क्या वस्तु है—

मन्त्र अक्षर अथवा अक्षरोंका समूहरूप होता है। कहा है—'निर्बीजमक्षरं नास्ति'—अर्थात् ऐसा कोई अक्षर नहीं है जिसमें शक्ति न हो। शब्दकी शक्ति अपरिमित है और उसका अनुभव हमें अपने जीवनमें होता रहता है। बिजलीकी कड़कके शब्दसे अथवा युद्ध भूमिमें होने वाले तोपोंकी गर्जनाके शब्दसे अनेक लोग बहरे हो जाते है, अनेक पागल हो जाते है, अनेकोंका हार्ट फेल हो जाता है। सुन्दर सुरीला गायन सुनकर चित्त प्रफुल्लित हो उठता है। रोते हुये बच्चे तक चुप होकर उसे सुनने लगते है। इसके विपरीत कर्णकटु शब्दोंको सुनकर मन खिन्न हो जाता है, हसता हुआ रोने लगता है, इसीसे जैन सिद्धान्तमें भोजनके अन्तराय बतलाते हुये कहा है कि भोजन करते समय यदि अत्यन्त कठोर अथवा हृदयको द्रवित कर देने वाला अत्यन्त कारुणिक शब्द सुन पड़े तो तत्काल भोजन छोड़ देना चाहिये, क्योंकि उसका मनपर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है जिससे भोजनके परिपाक तकमें खराबी पैदा हो सकती है और आत्मिक स्वास्थ्यके साथ-साथ शारीरिक स्वास्थ्य भी बिगड़ सकता है।

एक व्याख्याताके चन्द शब्द श्रोताओंके हृदयमें उत्साहकी लहर पैदा कर देते है और दूसरेके चन्द शब्द पैदा हुई उत्साहकी लहरको दबा देते है। महाभारतके युद्धकी घटना है जब कर्ण और अर्जुनका युद्ध हुआ तो कर्णके सारथी शकुनिने कुन्तीको दिये गये अपने वचनके अनुसार कर्णको हरानेका एक सरल मार्ग अपनाया। जब अर्जुन बाण छोड़ता था तो वह चिल्लाता था 'वाह अर्जुन' और जब कर्ण बाण छोड़ता था तब वह उसे झिड़-

करते हुये कहता था–'छि.'। इस उत्साह और अनुत्साह कारक वाक्योंने एकको जिता दिया और दूसरेको हरा दिया। अतः शब्दकी शक्ति अपरिमित है, केवल 'योजकस्तत्र दुर्लभः'। किन शब्दोंके मिलानेसे किस प्रकारकी शक्ति पैदा होती है इसको जान कर उन शब्दोंकी योजना करना ही कठिन है। जो मन्त्र द्रष्टा या उसके आविष्कर्ता होते हैं वे इस प्रकारकी योजना करके ऐसे अक्षरोंका मेल बैठाते हैं जिनके मेलसे उस प्रकारका कार्यसाधक शक्ति प्रकट होती है।

किन्तु मन्त्रमें केवल अकेले शब्दकी ही शक्ति कार्य नहीं करती, बल्कि अन्य शक्तियाँ भी कार्य करती हैं। वे अन्य शक्तियाँ हैं मन्त्रका वाच्य पदार्थ, मन्त्रके योजककी आत्मिक भावना जो उसके द्वारा योजित मन्त्रमें सदा अनुस्यूत रहती है, और मन्त्रके जपकर्ताकी आत्मिक भावना वगैरह।

आशय यह है कि पद, पदार्थ और पदोंके योजककी आध्यात्मिक शक्तिका समन्वय ही मंत्र है। ये तीनों जैसे होते हैं मंत्रकी शक्ति भी वैसी ही होती है। यदि कोई मंत्रयोजक रौद्रपरिणामी है अपने प्रतिद्वन्द्वीको मारकर ही अपना कार्य सिद्ध करना चाहता है और उस कार्यके प्रति एकनिष्ठ है तो वह मन्त्र मारक ही होगा। जैन सिद्धान्तमें ऋद्धियोंका वर्णन करते हुए बतलाया है कि ऐसे भी प्रकृष्ट तपस्वी होते हैं जिनमें ऐसी शक्ति प्रादुर्भूत हो जाती है कि जिसे वे कहदें 'मरजा' वह तत्काल मर जाता है। दुनियामें न जाने कितने आदमी प्रतिदिन दूसरोंके मरनेकी कामना करते रहते हैं और न जाने कितनोंको दुरसीसते हैं। किन्तु कोई नहीं मरता। अतः शब्दके पीछे उसके प्रयोक्ताकी आध्यात्मिक शक्तिका बल होना जरूरी है। उसके बिना कोरे शब्द कुछ भी नहीं कर सकते। यह आध्यात्मिक शक्ति जो मन्त्र किसीके

अनिष्ट कारक है उनके लिये भी आवश्यक है और जो मंत्र इष्ट कारक हैं उनके लिये भी उपयोगी है। जैसे मुनिके शरीरसे निकलने वाला तैजस शरीर शुभ भी होता है और अशुभ भी होता है। दोनोंके लिये मुनिका प्रकृष्ट तपस्वी होना आवश्यक है उसके बिना इस प्रकारकी विशेषता उत्पन्न नहीं हो सकती। उसी प्रकार मन्त्र शक्तिके विषयमें भी समझना चाहिये। अन्तर केवल इतना ही है कि अनिष्ट कारक मंत्र शक्तिका प्रयोग उसके प्रयोक्ताके लिये भी अनिष्ट कारक ही होता है, क्योंकि जो दूसरेका बुरा करना चाहता है उसका भला कभी नहीं हो सकता। अस्तु,

मन्त्र शक्तिका प्रयोग—

आकर्षण, वशीकरण, उच्चाटन विद्वषण, स्तम्भन, संमोहन, साधारणतया ये ही मन्त्रोंकी शक्तियों है। या यह कहना चाहिये कि लौकिक कार्यकारी मन्त्रोंके द्वारा प्राय यही कार्य होता है इन्हींके लिये उनका उपयोग जन साधारण किया करते है। किसीका किसीकी तरफसे मन हट गया तो वह उसे अपनी ओर आकृष्ट करनेका प्रयत्न करता है, कोई किसीको अपने वशमे करना चाहता है, कोई किसीसे अपनी शत्रुता निकालना चाहता है। इत्यादि कार्योंमे मत्र शक्तिका प्रयोग होनेकी बात देखी जाती है। इसमे कहाँ तक सफलता मिलती है यह तो वही बतला सकते है जो यह काम करते है या जिन्होंने ऐसे कामोंमे मत्र शक्तिका प्रयोग करवाया है। फिर भी यह निश्चित है कि सफलता मत्र, उसका प्रयोग और प्रयोक्ताकी साधना वगैरहपर ही निर्भर है। यदि मंत्र ठीक नहीं है, वह किसी सच्चे साधकके द्वारा प्रयुक्त न होकर किसी ठगके द्वारा प्रयुक्त किया गया है, अथवा मंत्र अशुद्ध है, उसकी अक्षर योजना ठीक नही है, अथवा अक्षर योजना ठीक होते हुए भी उसका उच्चारण ठीक नहीं—अशुद्ध पाठ किया

गया है, या पाठ शुद्ध होते हुये भी जप करने वालेका चित्त एकाग्र नहीं है, उसमें उसकी श्रद्धा नही है तो मन्त्रशक्ति कार्य-कारी नहीं हो सकती। जैसे रोगकी चिकित्साके लिये योग्य वैद्यके द्वारा योग्य औषधिका प्रयोग, उसका यथाविधि सेवन और रोगीका पथ्य परहेज जरूरी है, इनके बिना योग्य औषधि भी कार्यकारी नही हो सकती, वैसे ही मंत्र शक्तिके सम्बन्धमे भी समझना चाहिये। जैसे 'निर्बीजमक्षरं नास्ति' वैसे ही 'नास्ति मूलमनौषधम्' अर्थात् जैसे ऐसा कोई शब्द नहीं जो शक्तिवाला न हो वैसे ही ऐसी कोई वनस्पति नहीं जो औषधि-रूप न हो। आवश्यकता ऐसे जानकार योजककी है जो विभिन्न वनस्पतियोंके मेलसे विभिन्न रोगोंकी औषधी निर्माण कर सके। और औषधी तैयार हो जानेपर ऐसे प्रयोक्ताओंकी आव-श्यकता है जो रोगीके अनुरूप औषधीको देखकर उसे उसका प्रयोग करनेकी सलाह वगैरह दे सके। इसके साथ ही रोगीका परिचारक भी ऐसा कुशल व्यक्ति हो जो उचित मात्रामे उचित अनुपानके साथ उचित समयपर औषधीका सेवन करा सके। तथा रोगी भी सच्ची आस्था पूर्वक औषधीका सेवन कर सके। तब जाकर औषधीका फल सुनिश्चित समझा जा सकता है। यदि औषधीका निर्माण ठीक न हुआ हो, जिस औषधीकी जितनी मात्रा नियत है उसी मात्रामे वह औषधी उसमे न डाली गई हो, कोई औषधी कमती और कोई मात्रासे अधिक हो, अथवा औषधीके ठीक होते हुए भी उसकी विधि और अनुपानमें त्रुटि रह गई हो, रोगीका परिचारक लापरवाह हो और रोगी भी अपथ्य सेवी हो तो ठीक औषधी भी फल दायक नहीं हो सकती। यही बात मन्त्रके विषयमे भी जानना चाहिये। बल्कि औषधी सेवनके लिए बरती जानेवाली सावधानीसे भी अधिक सावधानी मन्त्रके लिए जरूरी है। किन्तु खेद है कि

लोग औषधिका प्रयोग करते समय तो योग्यसे योग्य चिकित्सककी सलाह लेते है, किन्तु मन्त्रकी आराधनाके समय उस विषयके सच्चे प्रयोक्ताकी खोजतक नहीं करते और यद्वा तद्वा मान्त्रिकोंके धोखेमे आकर, अपनी शक्तिको बिना तोले ही मन्त्रकी आराधना करने लग जाते है और साधकके लिए आवश्यक उचित खान पान और सयम तकका ध्यान नहीं रखते। फल यह होता है कि आत्म नियन्त्रण न कर सकनेके कारण या मानसिक कमजोरीकी वजहसे कोई विक्षिप्त हुआ सुना जाता है, कोई मृत्युके मुखमे चला जाता है और कोई जीवन भर दुःख भोगता है। इसमे कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। अनाड़ी वैद्यकी दवा खानेसे या रोगके प्रतिकूल दवा सेवन करनेमे भी ऐसा प्राय हुआ करता है। फिर मन्त्र-शक्ति तो दुधारी तलवार है, वह रक्षक भी है और संहारक भी है। जैसे यदि तलवारका प्रयोग ठीक ढगसे किया जाये तो वह अपने स्वामीका रक्षा करती है और उसके शत्रुको मार डालती है, किन्तु यदि उसे कोई अनजान आदमी उठाकर घुमाने लगे तो वह उसीका सहार कर डालती है। मन्त्रकी भी यही बात है, वह शक्तिशाली होता है अत साधकमे उसकी शक्तिको झेलनेकी शक्ति तो होनी ही चाहिये।

पहले बतलाया है कि मन्त्र देवाधिष्ठित होते है और साधक मन्त्रकी साधनाके द्वारा उनके अधिष्ठाता देवोंको वशमे करनेकी चेष्टा करता है। अत इस क्रियामे वही सफल हो सकता है जो अपनेको देवतासे भी शक्तिशाली मानता हो और जिसे यह आत्म-विश्वास हो कि देवता नहीं, देवताका पिता भी आये तो वह मेरा कुछ नहीं कर सकता। किन्तु जो देवताके नामसे घबराते है और अपनेको उनका गुलाम समझते है और समझते है कि देवता बड़े शक्तिशाली होते है, वे यदि उन्हें वशमे करनेके लिए चले तो वह उनकी केवल धृष्टता है। देवता उन्हें न डराये तो भी वे स्वय ही

अपनी कमजोरीके कारण डरे बिना नहीं रह सकते। फिर प्रायः लोग विषय कषायोंकी पुष्टिके लिए ही लालायित रहते है, उसीके लिए वे मन्त्र साधना भी कर बैठते हैं। ऐसे लोग स्वभावसे ही डरपोक और कायर हुआ करते है। उनमें वह दृढ़ता नहीं होती जो एक साधकमें होना जरूरी है। 'कार्यं वा साधयामि शरीरं वा पातयामि'—'करूंगा या मरूंगा' यह संकल्प करके जो इस मार्गपर उतरते है वे ही सफलता भी प्राप्त करते है। अतः किसी भी मन्त्र साधकको जल्दबाजीसे काम नहीं लेना चाहिये और बहुत सोच समझकर ही इस मार्गमें पैर रखना चाहिये तथा बिना किसी योग्य गुरुके आगे नहीं बढ़ना चाहिये। साधारणतया मन्त्र शक्तिके विषयमें ये ऐसी बाते है जिनका ध्यान रखना जरूरी है, और उनके बिना मन्त्र शक्तिका लाभ नहीं उठाया जा सकता।

मन्त्र, मन्त्रशक्ति और उसकी साधनाके विषयमें कुछ मोटी मोटी जानकारी करानेके पश्चात् अब प्रकृत विषयपर आते है।

नमस्कार मंत्रकी विशेषता—

मन्त्र शास्त्रकी दृष्टिसे नमस्कार मन्त्र विश्वके समस्त मन्त्रोंसे अलौकिक है। यह 'महतो महीयान्' है और 'लघुतो लघीयान्' है। अर्थात् जहाँ यह कुछ बातोंमे महान्से भी महान् है वहीं कुछ बातोंमे यह लघुसे भी अतिशय लघु है—छोटोंसे भी अत्यन्त छोटा है। एक ओर इसकी शक्ति अतुल है, दुनियाकी कोई ऐसी ऋद्धि सिद्धि नहीं है जो इसके द्वारा प्राप्त न की जा सके, किन्तु साधकका उन ऋद्धि सिद्धियोंकी ओरसे निष्काम होना जरूरी है। कामना करके मन्त्रकी आराधना करनेसे उनकी प्राप्तिमें सन्देह है, परन्तु निष्काम होकर मन्त्रकी साधना करनेसे उनकी प्राप्ति सुनिश्चित है। जहाँ विश्वके अन्य मन्त्र कामना करनेसे उसकी पूर्ति करते हैं, वहीं यह मन्त्र निष्काम होनेसे सब कामनाओंकी पूर्ति करता है।

इसका कारण यह है कि यह मन्त्र प्रथम तो उस महती आत्म-शक्तिकी प्रतिध्वनि है जिसका यह मन्तव्य है कि यदि पकड़नेके लिए दौड़ो तो अपनी छाया भी आगे-आगे भागती है और यदि उस ओरसे विमुख हो जाओ तो छाया पीछे-पीछे लगी फिरती है। यही दशा संसारकी है। इसमें जिसकी कामना करो–इच्छा करो चाहो, वह नहीं मिलता और दूर भागता है, किन्तु जिसे न चाहो उपेक्षा करो, वह हमारे पीछे पीछे घूमता है। आचार्य समन्तभद्रने लिखा है—

> बिभेति मृत्योर्न ततोऽस्ति मोक्षो,
> नित्यं शिवं वाञ्छति नाऽस्य लाभः।
> तथापि बालो भयकामवश्यो
> वृथा स्वयं तप्यत इत्यवादीः॥–बृहत्स्वयं भृ०।

'प्राणी मौतसे डरता है– विष्टका कीड़ा भी मरना नहीं चाहता, किन्तु उससे किसीका छुटकारा नहीं है–सभीको मौतके मुहमे जाना ही पड़ता है। प्रत्येक मनुष्य सदा इस बातकी इच्छा करता है कि कभी भी मेरा कोई अनिष्ट न हो–सदा शुभ ही शुभ हो, किन्तु उसकी यह कामना पूरी नहीं होती–इष्टके साथ अनिष्ट भी लगा ही रहता है। फिर भी यह मूर्ख प्राणी व्यर्थ ही भय और कामनाके चक्करमे पड़कर क्लेश भोगता है।'

अतः इच्छा व्यर्थ है, क्योंकि जो हम चाहते हैं वह हमे नहीं मिलता और जो नहीं चाहते वह मिल जाता है। यह बात अपनी आंखोंके सामने हम प्रति दिन देखते हैं। जो सन्तानके लिए लालायित रहते है, दुनिया भरके गण्डे तावीज कराते है, मठों और कब्रिस्तानोंकी खाक छानते है उनके चूहेका बच्चा भी नहीं होता और जो बहु सन्तानके मारे परेशान है उनके सन्तानपर

सन्तान होती चली जाती है। इसी तरह जो साधु निस्पृह होकर रहते है, किसीसे कुछ मागते नहीं और देनेपर लेते नहीं, लोग उनके चरणोंमे सब कुछ अर्पित करनेके लिए तैयार रहते हैं, और जो घर घर मागते डोलते है उन्हे सब दुतकारते है। इसीसे किसीने कहा है—

'बिन मांगे मोती मिले, मागे मिले न भीख'।

संसारकी यह दशा देखकर ही नमस्कार मन्त्रके द्रष्टा ऋषियोंने विश्वको यह अमूल्य सीख दी कि—

त्यज्यते रज्यमानेन राज्येनान्येन वा जनः।
भज्यते त्यज्यमानेन तत्त्यागोऽस्तु विवेकिनाम्॥

—तत्र चूडामणि।

'अनुरक्त होनेसे राज्य सम्पदा या अन्य विभूति स्वय मनुष्यको छोड़ देता है और विरक्त होनेसे उसके चरणोंपर लोटती है। अत विवेकी पुरुषोको उसका त्याग कर देना ही उचित है।'

दूसरे, नमस्कार मन्त्रके द्वारा जिनकी आराधना की जाती है वे सभी वीतरागी और निस्पृह महात्मा है। ऊपर जो शिक्षा दी गई है वह उन्हींकी उपज है-उन्हींका उपदेश है, उन्हींके अपने अनुभवोंका सार है- निचोड़ है। उसका विस्तृत विवेचन आगे किया गया है, उससे पता चलता है कि नमस्कार मन्त्रके आराध्य-देव कितने पुनीत, कितने विशुद्ध और कितने जन कल्याणकारी है। उन पवित्र आत्माओंकी पुण्य शक्तिका ही यह प्रताप है जो नमस्कार मंत्र इतना शक्तिशाली है, क्योंकि जड़की शक्तिसे चेतनकी शक्ति अपरिमित है। जड़की शक्ति तो चेतनके हाथका खेल है, वही उसका आविष्कर्ता है और वही उसका रोधक भी है। अत परिपूर्ण आत्म शक्तिसे युक्त महापुरुषोंकी आराधनासे समाविष्ट

होनेके कारण प्रकृत नमस्कार मंत्र अन्य लौकिक मंत्रोंसे विशिष्ट है। इसीसे जहाँ देवता अन्य मंत्रोंके अधिष्ठाता है वहाँ वे इस मन्त्रके सेवक रूपमे काम करते हैं। यह इसकी तीसरी विशेषता है।

आशय यह है कि पहले यह बतलाया है कि जो देवतासे अधिष्ठित होता है वह मन्त्र कहलाता है। उस मन्त्रका जप करनेसे उसका स्वामी देवता यदि वशमे कर लिया जाता है तो वह मन्त्र सिद्ध हुआ कहलाता है। किन्तु नमस्कार मन्त्र एक ऐसा प्रभावशाली मन्त्र है जिसका स्वामी होनेकी शक्ति किसी देवतामे नहीं है। अत देवता उसके स्वामी न होकर सेवक होते है। और जो उस मन्त्रकी आराधना करता है मन्त्रकी भक्ति वश वे उसके भी सेवक बन जाते है। सारांश यह है कि किसी देवताकी शक्तिके कारण नमस्कार मन्त्र शक्तिशाली नहीं है, किन्तु उसकी शक्तिके कारण देवता तक उसके सेवक है। और उसके शक्तिशाली होनेका कारण पहले बतलाया है।

यह सदा ध्यानमे रखना चाहिये कि मनुष्यकी शक्ति देवताओंसे भी अधिक होती है। देवता अधिकसे अधिक चौथे गुणस्थान तक आत्मोन्नति कर सकते है। किन्तु मनुष्य चौदहो गुणस्थानपर चढ़कर मुक्ति तक प्राप्त कर सकता है। जिन तीर्थंकरोंके कल्याणकोंके अवसरपर देवता गण स्वय भागे भागे आते है वे तीर्थंकर मनुष्य ही होते है। उनके आनेसे तीर्थंकरका महत्त्व नहीं है किन्तु तीर्थंकरकी महत्तासे वे महिमान्वित होते है। जैसा कि एक स्तुतिकारने कहा है—

'इन्द्रः सेवां तव सुकुरुतां किं तया श्लाघनं ते
तस्यैवेयं भवलयकरी श्लाघ्यतामातनोति।'

अर्थात्—'हे जिनेन्द्रदेव! इन्द्र आपकी सेवा करे, उससे आपका

क्या महत्त्व है ? हाँ, आपकी सेवा करनेसे वह ससार समुद्रसे पार अवश्य हो जाता है'।

उन तीर्थंकरोंकी और क्रमशः जिन पदोंपर आरोहण करके तीर्थंकर होते है उन पदोंकी आराधना नमस्कार मन्त्रके द्वारा की जाती है अतः देवता उस मन्त्रके सेवक है। और जो भक्ति भावसे उस मन्त्रकी आराधना करता है धर्मप्रेम वश वे उसकी सेवा करनेके लिए सदा तत्पर रहते है। प्रथमानुयोगके ग्रन्थोंमे ऐसे उदाहरण भरे पड़े है, जिनमेंसे कुछका उल्लेख आगे किया गया है। अतः इस दृष्टिसे भी प्रकृत नमस्कार मन्त्रका स्थान मन्त्र साहित्यमे बहुत ऊंचा है।

चौथी इसकी विशेषता यह है कि प्रायः मन्त्र अत्यन्त गूढ़ार्थक होते है। उनकी शब्दरचना ऐसी होती है कि उनका उच्चारण करना भी कठिन होता है। फिर अर्थकी बात तो निराळी ही है, अच्छे, अच्छे मन्त्रवेत्ता और साधक तक उनके अर्थसे अपरिचित होते हैं। किन्तु यह मन्त्र इतना सरल है कि प्राकृत भाषाका मामूली जानकार मनुष्य भी सरलतासे उसका मोटा सा अर्थ कर सकता है। और वह अर्थ इस प्रकार है —

'अरहंतोंको नमस्कार, सिद्धोंको नमस्कार, आचार्योंको नमस्कार, उपाध्यायोंको नमस्कार, लोकके सब साधुओंको नमस्कार।'

कितना स्पष्ट अर्थ है जिसमे रंचमात्र भी कठिनाई नहीं है। हो सकता है कि इसकी सरलता देखकर कोई कहे कि यह तो मन्त्र नहीं है, कुछ वाक्योंका समूह मात्र है, मन्त्रमे तो गूढ़ार्थक बीजाक्षर हुआ करते है। किन्तु ऐसी आशङ्का उचित नहीं है। जिस मन्त्रका जैसा कार्य होता है उसकी शब्द रचना भी उसीके अनुरूप होती है। यह मन्त्र सिद्धि दाता है अत. उसीके अनुरूप उसकी शब्द रचना भी है। फिर भी आकर्षण, वशीकरण आदि जो मन्त्रोंकी शक्तियाँ हैं वे सब शक्तियाँ इस महामन्त्रमें मौजूद

हैं। अन्तर केवल इतना है कि यह महामन्त्र किसी प्रेमीकी ओर किसी प्रेमिकाको आकृष्ट नहीं करता और न किसी स्त्री या पुरुषपर मोहन-मन्त्र डालनेका काम ही करता है। इसी तरह इसके द्वारा किसी व्यक्तिका उच्चाटन या मारण भी नहीं होता। वास्तवमें तो यह मन्त्र देवसंपदा दिलानेकी शक्ति रखता है मुक्ति रूपी लक्ष्मीके लिए वशीकरण है, सांसारिक कष्टों और विपत्तियोंका संहारक है, पापका शत्रु है और संसारकी जड़ जो मोह है, उसे जड़ मूलसे उखाड़कर फेंक देनेवाला है, किन्तु किसी अपने विपक्षीको इसके द्वारा हानि नहीं पहुंचायी जा सकती। यह तो प्राणिमात्रका रक्षक है और बुराई मात्रका भक्षक है। इससे आप इष्टकी प्राप्ति कर सकते हैं और अनिष्टसे बच सकते हैं किन्तु दूसरोंका बुरा नहीं कर सकते, उनको हानि नहीं पहुंचा सकते। यही इस मन्त्रकी सब-से-बड़ी विशेषता है। दूसरे शब्दोंमें यह एक अहिंसक मन्त्र है, अहिंसक ही इसके आराध्य हैं और अहिंसक ही इसकी आराधना कर सकता है। इसीसे इसकी शब्दावली भी कटु नहीं, किन्तु कोमल है। इन सब विशेषताओंके कारण तो यह मन्त्र 'महतो महीयान्' है—बड़ासे भी बड़ा है। किन्तु इसकी साधना सरलसे भी सरल है—उसके लिए किसी बड़े भारी बाहिरी आडम्बरकी आवश्यकता नहीं है। यद्यपि जो इस मन्त्रको सविधि उपासना करना चाहते हैं उनके लिए यथोचित विधि भी शास्त्रोंमें बतलायी गयी है। जिसका संक्षिप्त रूप आगे दिया जायगा। किन्तु जो वैसा करनेमें असमर्थ हैं, वे केवल इसका ध्यान करने मात्रसे ही इष्ट फलको प्राप्त कर सकते हैं, जैसा कि कहा है—

'अपवित्रः पवित्रो वा सुस्थितो दुःस्थितोऽपि वा।
ध्यायेत पञ्चनमस्कारं सर्वपापैः प्रमुच्यते॥'

अर्थात्–'अपवित्र हो या पवित्र हो, उचित रीतिसे स्थित हो या किसी भी स्थितिमे हो, जो पञ्च नमस्कार मन्त्रका ध्यान करता है वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है।'

प्रथमानुयोगके कथा ग्रन्थोंमे बतलाया है कि कैसे-कैसे अधम जीव इस मन्त्रके शब्द कानमे पड़ने मात्रसे तिर गये। इसीसे महामन्त्र होते हुए भी यह 'लघुनो लघीयान्' है–लघुसे भी लघु है। सब तक इसकी पहुच है अथवा यह कहिये कि सबकी इसतक पहुच है। पापी-से-पापी जीव इसका ध्यान करके पापसे मुक्त हो जाता है। ऐसा यह महामत्र है। जो मन्त्र शास्त्रकी दृष्टिसे अद्भुत होते हुए भी सबके लिए सुलभ है।

आगमिक साहित्य और नमस्कार मंत्र—

जब जैन धर्ममे इस नमस्कार मन्त्रका इतना माहात्म्य है और जैनोंके सभी सम्प्रदायोंमे इसकी इतनी अधिक मान्यता है तो यह जाननेकी उत्कण्ठा होना स्वाभाविक है कि जिस आगमिक साहित्यका भगवान् महावीरकी वाणीसे निकट सम्बन्ध बतलाया जाता है और जो समस्त जैन साहित्यका मूल है उसमे इस नमस्कार मन्त्रकी क्या स्थिति है? क्यों कि श्वेताम्बरीय लघु नवकार फलमें इस मंत्रका माहात्म्य बतलाते हुए इसे जैन शासनका सार और चौदह पूर्वोंका उद्धाररूप कहा है। यथा—

'जिण सासणस्य सारो चउदसपुव्वाण जो समुद्धारो।
जस्स मणे नवकारो संसारो तस्स किं कुणइ?

अर्थात्—जो जिन शासनका सार है और चौदह पूर्वोंका उद्धाररूप है ऐसा नमस्कार मंत्र जिसके मनमे है, ससार उसका क्या कर सकता है?

अतः जिसे एक स्तुतिमे चौदह पूर्वोंका उद्धार रूप बतलाया

है उसके सम्बन्धमे यह जाननेकी इच्छा स्वाभाविक है कि आगमिक साहित्यका इस विषयमे क्या मन्तव्य है और वह व्यक्ति कौन है जिसने इस महामंत्रका चौदह पूर्वोसे उद्धार किया अथवा इस महामंत्रकी किसने रचना की ?

श्वेताम्बर महानिशीथ[1] सूत्रमे इस मंत्रको 'महाश्रुत स्कन्ध' जैसे प्रभावक विशेषणसे अभिहित किया है और लिखा है कि अनंत ज्ञान और अनंत दर्शनके धारक तीर्थंकरोने इस पंचमंगल महाश्रुत स्कंधका जैसा व्याख्यान किया था उसीके अनुसार संक्षेपमे निर्युक्ति भाष्य और चूर्णिके द्वारा बड़े प्रयत्नसे उसका व्याख्यान निबद्ध किया गया था। किन्तु कालके दोषसे वे निर्युक्ति, चूर्णि और भाष्य नष्ट हो गये। तब समय बीतनेपर द्वादशांग श्रुतके धारी और पदानुसारी महर्द्धिमे विशिष्ट वज्रस्वामी मुनि हुए। उन्होने पंचमगल महा श्रुतस्कन्धका उद्धार करके उसे मूल सूत्रके मध्यमें लिखा। मूल सूत्रके सूत्रकार तो गणधर देव हैं और अर्थ रूपसे उसके कर्ता तीनो लोकोसे पूजित भगवान् तीर्थंकर श्री वीर जिनेन्द्र देव है ऐसा वृद्ध सम्प्रदाय है।

१—एय तु पञ्चमगल महासुयक्खंधस्स वक्खाण, त महया पबन्धेण अणंत गमपज्जवेहिं सुत्तस्य पियभूयाहि णिज्जुत्तिभासचुन्नाहि जहेव अणंतनाणदसणधरेहि तित्थयरेहिं वक्खाणिय, तहेव समासओ वक्खाणिज्ज त आसि, अहन्नया कालपरिहाणिदोसेण ताओ णिज्जुत्तिभासचुन्नीओ वुच्छिन्नाओ। इओ य वच्चतेण कालेण समएण महाड्ढपत्ते पयाणुसारी वइरसामी नाम दुवालसग सुअहरे समुप्पन्ने। तेण य पचमगलमहासुयक्खधस्स उद्धारो मूलसूत्तस्य मज्झे लिहिओ। मूलसूत्त पुण सुत्तताए गणहरेहिं अत्थत्ताए अरिहतेहिं भगवतेहिं धम्मतित्थयरेहि तिलोगमहिएहिं वीरजिणिदेहि पन्नविय ति एस वुड्ढसपयाओ।'—महानि०

नमस्कारके अनादित्वपर विचार–

उक्त उल्लेखसे जहाँ आगमिक साहित्यमें नमस्कार मंत्रकी अत्यन्त आदरणीय स्थितिपर प्रकाश पड़ता है वहीं इस बातका भी स्पष्टीकरण हो जाता है कि यह मंत्र साक्षात् भगवत् वाणीसे सम्बद्ध है और इसका कोई कर्ता नहीं है। हाँ, शब्दकारके रूपमें गणधर देवका नाम लिया जा सकता है। परम्परासे भी यही सुना जाता है कि यह मंत्र अनादि है जैसा कि लघुनवकार फलमें कहा है—

'एमो अणाइ कालो, अणाइ जीवो अणाइ जिणधम्मो।
तइया वि ते पढंता एसुच्चिय जिणणमुक्कारं ॥ १६ ॥

जे केइ गया मोक्खं गच्छंति य केऽवि कम्मफलमुक्का।
ते सव्वे वि य जाणसु, जिण नवकार प्पभावेण ॥ १७ ॥

अर्थात्–'काल भी अनादि है, जीव भी अनादि है और जिन धर्म भी अनादि है तभीसे वे सब नमस्कार मन्त्रको पढते है। जो कर्म मलसे छूट कर मोक्षको गये है अथवा जाते है (और जायगे) वे सब नमस्कारमंत्रके प्रभावसे ही जानने चाहिये।'

एक प्राचीन कवितामे भी कहा है—

"आगे चौवीसी हुई अनंती, हो सी बार अनंत।
नवकार तणी कोइ आदि न जाणे,एम भाखे अरिहंत।"

अर्थात–अरहत भगवानका कहना है कि अनन्त चौबीसी हो चुकीं और अनन्त चौबीसी आगे होगी। किन्तु नमस्कार मंत्रके आदिकी कोई नहीं जानता। अर्थात यह मंत्र अनादि है।

दिगम्बर सम्प्रदायमें भी परम्परासे यही मान्यता प्रचलित है। इसीसे इसे अनादि-मूल-मंत्र कहा जाता है। जैसे श्वेताम्बर सम्प्रदायके भगवतीसूत्रका यह मंत्र आदि मंगल है वैसे ही दिग-

म्बर सम्प्रदायके द्वारा आगम रूपसे मान्य प्राचीन षट्खण्डागम नामक ग्रंथराजका भी यह आदि मंगल है। जब तक यह ग्रंथ प्रकाशमें नहीं आया था तब तक नमस्कार मन्त्रके कर्तृत्वको लेकर दिगम्बर सम्प्रदायमे कभी कोई चर्चा ही नहीं उठी थी क्यों कि मन्त्रकी अनादितापर सभीका विश्वास था। किन्तु इस ग्रंथके प्रकाशमे आने पर ग्रन्थके टीकाकार श्री वीरसेन स्वामीके द्वारा अपनी टीकामे उठायी गयी एक चर्चासे यह विषय विवादग्रस्त बन गया है। वह चर्चा इस प्रकार है—

षट् खण्डागमके प्रथम खण्ड जीवट्ठाणके प्रारंभमे यही मंत्र मंगल[1] रूपसे पाया जाता है। इसी उत्थानिका करते हुए वीर सेन स्वामीने लिखा है—

'मंगल निमित्त, हेतु, परिणाम, नाम, और कर्त्ता इन छः का कथन करके पाश्चात् आचार्यको शास्त्रका व्याख्यान करना चाहिये।' आचार्य परंपरासे आये हुए इस न्यायको मनमे धारण करके और पूर्वाचार्योंके आचारका अनुसरण करना रत्नत्रयका कारण है, यह मान कर आचार्य पुष्पदन्त मंगल आदि छह अधिकारोंका सकारण व्याख्यान करनेके लिए सूत्र कहते है—णमो अरिहंताणं आदि।'

आगे मंगलका व्याख्यान करते हुए वीरसेनाचार्यने लिखा* है—

१—"मंगल णिमित्त-हेऊ परिमाणं णाम तहय कत्तारं। वागरिय छप्पि पच्छा वक्खाणउ सत्थमाइरियो॥ इदि णायमाइरियपरंपरागयं मणेणा-वहारिय पुव्वाइरियायाराणुसरणं तिरयणहेउ त्ति पुप्फदंताइरियो मंगला-दीणं छण्णं सकारणाणं परूवणट्ठं सुत्तमाह—णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं। णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं॥

*'तच्च मंगलं दुविहं णिबद्धमणिबद्धमिदि। तत्थ णिबद्धं णाम जो

मंगल दो प्रकारका होता है—निबद्ध मंगल और अनिबद्ध मंगल। जो ग्रन्थके आदिमें ग्रन्थकारके द्वारा देवता-नमस्कार निबद्ध कर दिया जाता है वह निबद्ध मंगल है। और जो ग्रन्थके आदिमें ग्रन्थकारके द्वारा देवता नमस्कार किया जाता है वह अनिबद्ध मंगल है। यह जीवस्थान नामका प्रथम खण्ड निबद्ध मंगल है, क्योंकि 'इमेसि चोद्दसण्हं जीवसमासाणं' इत्यादि सूत्रके पहले निबद्ध 'णमो अरिहंताणं' इत्यादि देवता नमस्कार देखा जाता है।'

इससे तो इतना ही सिद्ध होता है कि जीवट्ठाणके प्रारंभमें आचार्य पुष्पदन्तने 'णमो अरिहंताणं' इत्यादि मंगल रखा है इसलिए वह ग्रन्थ निबद्ध मंगल है। यदि वे इस मंगलको ग्रन्थके प्रारंभमें मौखिक रूपसे करलेते और लिखित रूपसे न रखते तो यह ग्रन्थ अनिबद्ध मंगल कहलाता। इससे यह सिद्ध नहीं होता कि पुष्पदन्त आचार्यने इस मंगलको स्वयं रचा है, किन्तु इसी षट्खण्डागमके वेदनाखण्डके आदिमें 'णमो जिणाणं' इत्यादि मंगल सूत्र पाये जाते हैं। उनकी टीका करते हुए वीरसेन स्वामीने निबद्ध और अनिबद्धसे उसका क्या अभिप्राय है यह स्पष्ट कर दिया है। वे लिखते हैं— (55 पेज-२ मे है)

"यह मंगल निबद्ध है या अनिबद्ध। यह निबद्ध मंगल तो है नहीं, क्योंकि महाकर्म प्रकृति प्राभृतके कृति आदि चौबीस अनुयोग द्वारोंके आदिमें गौतम स्वामीने इस मंगलका कथन किया

सुत्तस्सादीए सुत्तकत्तारेण णिबद्धदेवदा णमोक्कारो तं णिबद्धमंगलं जो सुत्तस्सादीए सुत्तकत्तारेण कयदेवदा णमोक्कारो तमणिबद्धमंगलं। इदं पुण जीवट्ठाणं णिबद्धमंगलं। यत्तो 'इमेसिं चोद्दसण्हं जीव समासाणं' यदि एदस्स सुत्तस्सादीए णिबद्ध 'णमोअरिहंताणं' इच्चादि देवदा णमोक्कार दंसणादो।' —षट्खण्डागम, पु १, पृ० ४१।

है और भूतिबलि भट्टारकने उसे वहांसे उठाकर वेदनाखण्डके आदिमें मंगलके लिए रख दिया है। अतः इसके निबद्ध मङ्गल होनेमे विरोध आता है; क्योंकि न तो वेदना खण्ड महा कर्म प्रकृति पाहुड़ है क्योंकि अवयव अवयवी नहीं हो सकता। और न भूतवली गौतम है क्योंकि विकल श्रुतके धारक और धरसेनाचार्यके शिष्य भूतबलिको सकल श्रुतके धारक और वर्धमान स्वामीके शिष्य गौतम माननेमे विरोध आता है। और कोई प्रकार निबद्ध मङ्गलका हेतु हो नहीं सकता[1]"।

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि दूसरेके द्वारा रचे गये मङ्गलको उठाकर अपने ग्रन्थके आदिमे रख देनेसे कोई मङ्गल निबद्ध मङ्गल नहीं कहा जाता, किन्तु स्वयं ग्रन्थकारके ही द्वारा रचा जाकर जो मङ्गल ग्रन्थके आदिमे रखा जाता है वही निबद्ध मङ्गल है। अतः चूँकि वीरसेन स्वामी जीवट्ठाणके प्रारम्भमे रखे हुए णमोकार मन्त्रको निबद्ध मङ्गल बतलाते है, इस लिए वे इसे ग्रंथकार पुष्पदन्ताचर्यकी ही कृति मानते है यह स्पष्ट है।

अब वीरसेन स्वामीके इस लेखको महानिशीथ सूत्रके उल्लेखके साथ मिलाकर विचार करना चाहिये।

ऐतिहासिक पर्यवेक्षकोका ऐसा मत है कि महानिशीथ सूत्र बहुत बादकी रचना है। पंचमङ्गल महाश्रुतस्कन्धके सम्बन्धमे उससे जो उद्धरण पहले दिया है। उसके आगे ही महानिशीथमे लिखा है--

---

१--'तत्थेद किं णिबद्धमाहो अणिबद्धमिदि। ण ताव णिबद्धमगलमिदं, महाकम्मपयडि पाहुडस्स कदि आदि चउवीस अणियोगावयवस्स आदीए गोदमसामिणा परूविदस्स भूदबलि भडारएण वेयणाखंडस्स आदीए मंगलट्ठं तत्तो आणेदूण ठविदस्स णिबद्धत्त विरोहादो। ण च वेयणाखंडं महाकम्म पयडिपाहुडं अवयवस्स अवयवित्त विरोहादो। णाच भूदबली

'जहाँ[1] सूत्रका कथन परम्पराके अनुकूल न हो वहाँ श्रुतधरोंको यह दोष नहीं निकालना चाहिये कि यह ठीक नहीं लिखा। क्योंकि इस चिन्तामणि रत्नके तुल्य महानिशीथ श्रुतस्कन्धकी जो आदर्श प्रति मथुरामें सुपार्श्वनाथके टीलेमें और पन्द्रह दिनका उपवास करनेपर शासन देवीने मुझे अर्पित का थी उसके बहुतसे पत्र दीमक वगैरहके द्वारा खाये जानेसे खण्ड खण्ड होकर वहीं झड़ गये। फिर भी 'यह महानिशीथ श्रुतस्कन्ध अत्यन्त महत्त्वशाली है और समस्त प्रवचनोंका सार भूत है यह विचार कर प्रवचन वात्सल्य वश बहुतसे भव्य जीवोंका उपकार करनेके लिए तथा आत्महितार्थ आचार्य हरिभद्रने जो उस आदर्शमें देखा वह सब अपनी बुद्धिसे शुद्ध करके लिख लिया। और सिद्धसेन दिवाकर, वृद्धवादि, यक्षसेन, देवगुप्त,

---

णादमा, णिगल सुदधारयस्स वरसेणाइरियसीसस्स भूदबलिस्स सयलसुदधारय वड्ढमाणतेवासि णादमत्त विरोहादो ण च अण्णो पयारो णिब्बद्धमगलत्तस्स हेदुभूदो अत्थि।'

[1]—"जत्थय पयपयेणाणुलग्गं सुत्तालावगं न संपज्जइ, तत्थ तत्थ सुयहरेहिं कुलिहिय दोसो न दायव्वुत्ति। किंतु जो सो एयस्स अचिंत चिंतामणिकप्पभूयस्स महानिसीह सुयक्खंधस्स पुव्वायरिसो आसि मह्नुराए सुपासनाह थूहे पन्नरसेहिं उववासेहिं विहिएहिं सासणदेवीए मम अप्पिउत्ति ताहिं चेव खंडाखंडीए उद्देहियाइएहिं हेऊहिं बहवे पत्तगा परिसडिया तहा वि अच्चंत सुमहत्था इसयं इमं महानिसीह सुअक्खंधं कसिण पवयणस्स परम सारभूयं परं तत्तं महत्थंति कलिऊण पवयणवच्छलत्तेणं तहा भव्व सत्तोवयारयं च काउं तहाय आयहियट्ठयाए आयरिय हरिभद्देण जं तत्थायरिसे दिट्ठं तं सव्वं समइए सोहिऊण लिहियं ति अन्नेहिं पि सिद्धसेणदिवायर—वुड्ढवाइ—जक्खसेण—देवगुत्त—जसवद्धण—खमासमण सीस रविगुत्त—नेमिचंद—जिनदास गणिखमण—सच्चसिरियमुहेहिं जुगप्पहाण सुयहरेहिं बहु मन्नियमिणं।"

यशोवर्धन क्षमाश्रमण, रविगुप्त, नेमिचन्द्र, जिनदासगणि, सत्य-श्री आदि अन्य अनेक युग प्रधान श्रुतधरोंने इसे बहुत माना"।

महानिशीथ सूत्रमें ही पाये जाने वाले इस उल्लेखसे इतना तो स्पष्ट है कि जिस प्रति परसे महानिशीथका उद्धार किया गया वह प्राचीन थी। किन्तु इसमें जिन आचार्योंका उल्लेख है उस परसे वह पीछेका ग्रन्थ जान पड़ता है। फिर भी उसमें जो यह लिखा है कि पचमङ्गल श्रुतस्कन्धका उद्धार वज्रस्वामीने करके उसे मूल सूत्रके मध्यमे लिख दिया, इससे एक प्राचीन मान्यताका उल्लेख समझना चाहिये। श्वेताम्बरोंमे मूलसूत्र चार माने जाते हैं—आवश्यक, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन और पिण्डनिर्युक्ति। इनमेंसे आवश्यक, सूत्रके मध्यमें नमस्कार मन्त्र पाया जाता है। किन्तु उसका तथा अन्य तीन मूल सूत्रोंका वज्रस्वामीके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है।

तपागच्छकी पट्टावलीमे बतलाया गया है कि वीर निर्वाणसे ४९६ वर्ष पश्चात् वज्रस्वामीका जन्म हुआ और ५८४ वर्ष पश्चात् स्वर्गवास हुआ। तथा उसीमे यह भी लिखा है कि वज्र-स्वामीने दक्षिणमें बौद्ध राज्यमे जाकर जैन धर्मका प्रभावना की थी। इस पट्टावलीसे लगभग ३२५ वर्ष पुरानी एक दूसरी पट्टावली है जिसका नाम है 'सिरी दुसमाकाल समणसंघथय'। इसमें भी एक वज्र नामके आचार्यका उल्लेख है और उनका समय वीरनिर्वाणसे ६१७ वर्ष पश्चात् पाया जाता है। कल्पसूत्रकी स्थविरावलीमे इन दोनोंको गुरु शिष्य बतलाया है। इसी समयके लगभग दक्षिणमे पुष्पदन्ताचार्यने षट्खण्डागमकी रचना की थी, जिसका आदि मङ्गल नमस्कार मंत्र है, जिसे टीकाकार वीर सेन पुष्पदन्तकृत बतलाते हैं।

महानिशीथ सूत्रके इस उल्लेखमें कि वज्रस्वामीने पञ्चमङ्गल

श्रुतस्कन्धका उद्धार किया तथा धवला टीकाके इस उल्लेखमें कि आचार्य पुष्पदन्तने अपने ग्रन्थके आदि मंगल नमस्कार मन्त्रको स्वयं बनाया, क्या कुछ सम्बन्ध है, कुछ नहीं कहा जा सकता।

इसके सिवा खारवेलके प्रसिद्ध शिलालेखका आरम्भ 'णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं' से होता है। ये दो पद नमस्कार मन्त्रके आद्यपद हैं और जैन मूलमन्त्रसे ही लिये गये हैं। इस लेखका समय विक्रमकी दूसरी शती सुनिश्चित है। यह समय भी श्री पुष्पदन्ताचार्यके लगभग समकालीन सा ही पड़ता है। फिर भी बिना विशेष खोजके किसी निर्णयपर पहुँचना उचित नहीं है। तथा परम्परासे तो यह मन्त्र अनादि ही माना जाता है।

दूसरे, इस मन्त्रमें किन्हीं व्यक्ति विशेषोंको नमस्कार न करके उन पाँच पदोंका नमस्कार किया गया है जो जैन धर्ममें सदासे परमपद माने जाते रहे हैं और आगे भी सदा परमपद माने जाते रहेंगे। प्रत्येक उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी कालमें चौबीस तीर्थंकर बदल जाते है, उनके गणधर बदल जाते हैं और श्रुतधर भी दूसरे दूसरे होते रहते है, किन्तु ये पाँच पद तो सदा अपरिवर्तनीय हैं। अतः जो इन पदोंपर विराजमान होंगे वे सदा नमस्कार किये जायेंगे। इस दृष्टिसे भी यह मन्त्र अनादि होना ही चाहिये। किन्तु महानिशीथ सूत्रके उक्त उल्लेखोंमेंसे एक बात विशेष ध्यान देनेकी है। उसमें लिखा है कि 'वज्रस्वामीने पंच मङ्गल (नमस्कार मन्त्र) का उद्धार करके उसे मूल सूत्रोंके मध्यममें लिख दिया। और मूल सूत्रोंके शब्दकर्ता गणधर है और अर्थकर्ता भगवान् महावीर है।' इस परसे ऐसा ध्वनित होता है कि वज्र स्वामीने अपने द्वारा उद्धार किये गये पंचमंगलसूत्रको मूल सूत्र ही समझा। इसीसे उसे मूल सूत्रोंके मध्यमें लिखा। तथा चूंकि मूलसूत्रोंके अर्थकर्ता भगवान् महावीर हैं और शब्दकर्ता गणधर अतः पञ्चमङ्गल

सूत्रके अर्थकर्ता भी भगवान् महावीर ही कहलाये। और ऐसा होनेमें कोई आपत्ति नहीं है क्योंकि जैन शासनमे पाँच पद नमस्करणीय है यह बात और उन पाँचों पदोंके नाम तो भगवान्ने ही बतलाये होंगे। प्रश्न केवल शब्दकर्ताका रह जाता है कि वर्तमानमें प्रचलित नमस्कार मन्त्रका शब्दकार कौन है ? क्या गौतम गणधर है अथवा कोई अन्य श्रुतधर है ? प्रसङ्गवश यहां एक घटनाका उल्लेख करना अनुचित न होगा।

कुछ वर्ष हुए एक भाषाशास्त्रविद्ने इन पंक्तियोंके लेखकसे यह प्रश्न किया था कि आप लोग अपने नमस्कार मन्त्रको अनादि बतलाते है किन्तु उसकी शब्द योजना तो भाषा शास्त्रकी दृष्टिसे अधिक प्राचीन नहीं सिद्ध होती। मैंने उन्हें यही उत्तर दिया था कि हमारे इस मन्त्रकी अर्थयोजना अनादि है शब्द योजनापर तो समयका प्रभाव पड़ सकता है, अस्तु।

नमस्कार मन्त्रका स्वरूप–

मन्त्रके कर्ताका विचार करनेके पश्चात् मंत्रके स्वरूपके संबंधमे भी विचार करना आवश्यक है। हो सकता है उससे भी प्रकृत विषयपर कुछ प्रकाश पड़ सके। दूसरे मंत्रका स्वरूप भी निश्चित होना आवश्यक है उसके विना ध्यान वगैरहकी प्रक्रिया नहीं बन सकती।

दिगम्बर सम्प्रदायमें नमस्कार मन्त्रका केवल एक ही रूप पाया जाता है जो इस निबन्धके प्रारम्भमे दिया है वही सर्वत्र प्रचलित है। न उसमे कोई पाठ भेद है और न कोई अक्षर भेद है। पैंतीस अक्षरका नमस्कार मन्त्र ही दिगम्बर सम्प्रदायमें आराध्य है। उसमें किसी भी तरहका कोई मतभेद नहीं पाया जाता।

श्वेताम्बर सम्प्रदायमे कुछ भेद प्रतीत होता है जैसा कि ताम्बर साहित्यके अवलोकनसे पता चलता है। हम पहले लिख आये हैं कि भगवती सूत्रके प्रारम्भमें नमस्कार मन्त्र दिया हुआ है। भगवतीसूत्रका जैन भास्करोदय जामनगरसे प्रकाशित संस्करण हमारे सामने है। उसमें अभयदेव सूरिकी संस्कृत टीका भी मुद्रित है। इस प्रतिमें तो नमस्कार मन्त्रका वही पाठ दिया है जो हम पहले दे आये हैं तथा जो दिगम्बर सम्प्रदायमें प्रचलित है। किन्तु अभयदेव सूरिकी टीकासे यह स्पष्ट है कि मूलपाठ 'णमो सव्वसाहूण' है, 'णमो लोए सव्वसाहूणं' नहीं है। टीकाकारने अपनी टीकामे 'णमो लोए सव्वसाहूणं' ति कचित् पाठः लिखकर उसे पाठभेद बतलाया है। ज्ञात होता है कि चूंकि दूसरा पाठ ही सर्वत्र प्रचलित है अतः प्रकाशक महोदयने मूलपाठ भी वही रखा है। अस्तु, यह तो कोई विशेष अन्तर नहीं कहा जा सकता।

किन्तु अभिधानराजेन्द्र नामक आगमिक कोषग्रन्थमें (पृष्ठ १८३५) भगवतीसे जो पाठ दिया है उसमे अन्तिम पद ही नहीं है और उसके स्थानमे 'णमो बंभीए लिवीए' यह पद है। अर्थात् उसका पाठ इस प्रकार है—

'णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो बंभीए लिवीए ॥'

यहाँ यह स्पष्ट कर देना उचित होगा कि भ० सू० की उक्त प्रतिमे 'णमो बंभीए लिवीए' सूत्र नं० २ है उसका नमस्कार मंत्रसे कोई संबंध नही बतलाया है। उक्त कोषसे ही यह भी पता चलता है कि दशा श्रुतस्कन्ध नामक ग्रन्थमें भी वही पाठ है जो अभी ऊपर दिया है। यह पाठभेद बहुत महत्त्वका है क्योंकि इसमें पांचवां पद 'णमो लोए सव्वसाहूणं' न होकर 'णमो बंभीए

लिवीए' है। अर्थात् साधुओंके स्थानमें ब्राह्मी लिपिको नमस्कार किया गया है, जो संगत प्रतीत नहीं होता। किन्तु अभि० रा० जैसे कोषग्रन्थमे उसका उल्लेख होनेसे उसे एक दम भ्रमपूर्ण भी नहीं कहा जा सकता। फिर भी इस पाठवाला नमस्कार मंत्र श्वेताम्बर सम्प्रदायमें कभी प्रचलित रहा हो, ऐसा कोई संकेत भी नहीं मिलता। तथा इस पाठको उत्तर कालीन किसी शास्त्रकारने नहीं अपनाया। अतः यही मानना चाहिये कि समस्त जैन सम्प्रदायमें पंच नमस्कार मन्त्रका एक ही स्वरूप मान्य रहा है जो इस निबन्धके प्रारंभमें दिया है।

नमस्कार मन्त्र या नवकार मन्त्र–

किन्तु समस्त जैन सम्प्रदायमे मंत्रका एक रूप मान्य होनेपर भी एक दूसरा प्रश्न विचारणीय हो जाता है और वह यह है कि इसे नवकार मंत्र भी कहते है। बल्कि यह कहना चाहिये कि श्वेताम्बर सम्प्रदायमे तो यह मंत्र नवकार मन्त्र ही कहा जाता है, जिसका देशीरूप नौकार मन्त्र दिगम्बर सम्प्रदायमे भी प्रचलित है। वैसे तो दिगम्बरोमे णमोकार मन्त्र नाम ही अधिक प्रचलित है जिसका संस्कृत रूप नमस्कार मन्त्र है। अब प्रश्न यह है कि इस मन्त्रका नाम नमस्कार मन्त्र है या नवकार अथवा दोनों है।

श्वेताम्बरोके चैत्यबन्दन भाष्यमे एक गाथा इस प्रकार है–

वन्नऽट्ठ सट्ठि नव पय नवकारे अट्ठ संपया तत्थ।
सग संपय पयतुल्ला सतरक्खर अट्ठमी दुपया॥ ३०

इसमें बतलाया है कि नमस्कार मन्त्रमें अड़सठ अक्षर होते है, नौ पद होते हैं, आठ संपत् यानी विश्राम-स्थान होते हैं। उनमें सात विराम स्थान तो पदके समान होते हैं किन्तु आठवें

विराम स्थानमें सत्तरह अक्षर और दो पद होते हैं। इसका खुलासा इस प्रकार है—

नमस्कार मन्त्रके साथ एक पद्य और है जिसमें उसका महात्म्य बतलाया गया है। वह पद्य इस प्रकार है—

एसो पंचणमुकारो, सव्वपावप्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं॥

इसमें बतलाया है कि यह पंच नमस्कार मन्त्र सब पापोंका नाश करनेवाला है और सब मंगलोंमे प्रथम मंगल है।

उक्त पंच नमस्कार मंत्रके साथ इस माहात्य सूचक पद्यको मिला देनेसे उसमें अड़सठ अक्षर हो जाते हैं। क्योंकि पंच नमस्कार मंत्रके पाँच पदोंके पैंतीस अक्षर होते हैं और इस दूसरे पद्यमें तैंतीस अक्षर हैं। दोनोंको जोड़नेसे ६८ अक्षर हुए। जैसा कि नमस्कार पंजिका और सिद्धचक्र वगैरहमें भी कहा है—

'पंच पयाण पणतीस वएण चूलाइ वएणा तित्तीसं।
एवं इमो समप्पइ फुडमक्खर अट्ठसट्ठीए॥'

तथा नौ पद हैं—नमस्कार मन्त्रमें पाँच पद हैं इस दूसरे पद्यमे ४ पद हैं। जैसा कि कहा है—

'सत्त पण सत्त सत्तय नव अट्ठय अट्ठ अट्ठ नव हुंति।
इय पय अक्खर संखा, अस्स हु पूरेइ अडसट्ठी॥'

अर्थात्—'णमो अरिहंताणं' इस पहले पदमे सात अक्षर है। 'णमो सिद्धाणं' इस दूसरे पदमे पाँच अक्षर है। 'णमो आयरियाणं' इस तीसरे पदमे सात अक्षर हैं। 'णमो उवज्झायाणं' इस चौथे पदमें सात अक्षर है। 'णमो लोए सव्वसाहूणं' इस पाँचवें पदमें

नौ अक्षर है। 'एसो पंच णमुक्कारो' इस छठे पदमें 'सव्वपावप्पणासणो' इस सातवें पदमे और 'मंगलाणं च सव्वेसि' इस आठवें पदमे आठ आठ-अक्षर है। और 'पढमं हवइ मंगलं' इस नवम पदमें नौ अक्षर है। इन नौ पदोंके अक्षरोंको जोड़नेसे [७+५+७+७+९+८+८+८+९=६८] समस्त अक्षरोंका जोड़ ६८ होता है।

तथा नौ पदोंके आठ विराम स्थान है, क्योंकि प्रत्येक पदका उच्चारण करनेके बाद थोड़ी देर रुकना होता है। अतः यह शंका हो सकती है कि नौ पदोंके विराम स्थान नौ ही होने चाहिये आठ क्यों हैं? इसका उत्तर यह है कि शुरूके सात पदोंके तो सात विराम स्थान है, किन्तु आठवां विराम स्थान आठवें और नौवें पदोंके उच्चारणके बाद होता है। यथा—'मंगलाणं च सव्वेसि पढमं हवइ मंगलं।' ये दोनों पद एक साथ उच्चारण करने चाहिये। इनके बीचमें विराम नहीं है। इसीसे आठवें विराममे दो पद और सतरह अक्षर बतलाये हैं।

इस तरह चूलिकाके ३३ अक्षरोंके साथ नमस्कार मन्त्रको पढ़नेका विधान श्वेताम्बर साहित्यमे पाया जाता है। जैसा कि 'बृहन्नमस्कार फल' में लिखा है—

'सत्त पण सत्त सत्त य नवक्खर पमाण पयड पंच पयं।
तित्तीसक्खर चूलं सुमरह नवकार वरमंतं॥'

अर्थात्—सात, पॉच, सात, सात और नौ अक्षरवाले पॉच पदों तथा तेतीस अक्षरकी चूलिकाको मिलाकर नवकार मंत्रका स्मरण करो।

इसका यह मतलब हुआ कि यतः श्वेताम्बर साहित्यमें चूलिका सहित नमस्कार मन्त्रको पढ़नेका विधान है अतः नमस्कार मन्त्रके

पाँच और चूलिकाके चार इस तरह नौ पदोंको मिलाकर श्वेताम्बर सम्प्रदायमें यह मन्त्र नवकारके नामसे प्रसिद्ध है।

यहाँ यह बतला देना आवश्यक है कि नवकारके सम्बन्धमें ऊपर जिन ग्रंथोंसे प्रमाण दिये हैं वे आगमकी कोटिमे नही आते। अतः यह जाननेकी उत्कण्ठा होना स्वाभाविक है कि इसका कोई आगमिक आधार है या नही। हमें खोजसे प्रतीत हुआ है कि महानिशीथ सूत्रके सिवा अन्य किसी आगमिक साहित्यमें नौ पदों वगैरहकी चर्चा नहीं है।

महानिशीथका सूत्र इस प्रकार है—

'तहेव च तदत्थाणुगामियं इक्कारसपयपरिच्छिन्नं ति आलावगतित्तीसऽक्खरपरिमाणं। एसो पंचनमुक्कारो ....'इय चूलत्ति अहिज्जंति ति।'

महानिशीथके सूत्रको उद्धृत करके चैत्यवन्दन भाष्यके टीकाकारने उक्त ३० वीं गाथाकी टीकामे लिखा[1] है—

'महानिशीथ सूत्रके सिवा वर्तमानमे उपलब्ध आगम सूत्रोंमेंसे किसीमें भी इस प्रकार नौ पद और आठ विरामादि युक्त नमस्कार मंत्र नहीं पाया जाता। क्योकि भगवती सूत्र वगैरहमे 'णमो अरिहंताणं' इत्यादि पाँच पद ही कहे है। प्रत्याख्यान निर्युक्तिमें नमस्कार सहित प्रत्याख्यान पारणाके प्रस्तावमे चूर्णिमें

१—"अन्यत्र तु सम्प्रति वर्तमानागमसूत्रमध्ये न कुत्राप्येव नवपद-अष्ट सपदादिप्रमाणो नमस्कार उक्तो दृश्यते, यतो भगवत्यादौ चैव पञ्च पदान्युक्तानि—नमो अरिहताण, नमो सिद्धाण, नमो आयरियाण, नमो उवज्झायाण, नमो (लोए) सव्वसाहूण, नमो बभीए लिवीए इत्यादि। क्वचिन्नमो लोए सव्वसाहूण ति पाठ इति तद्वृत्तिः। प्रत्याख्याननिर्युक्तौ तु नमस्कारसहितप्रत्याख्यानपारणप्रस्तावे चूर्णाविदमुक्तं—

लिखा है कि 'णमो अरिहंताणं' आदि पाँच पदोंको बोलकर पारणा करता है। नवकार निर्युक्ति चूर्णिमें कहा है–उस नमस्कारमें क्रमसे ६ पद अथवा दस पद होते है। ६ पद तो इस प्रकार है–'णमो[1] अरिहंत[2] सिद्ध[3] आयरिय[4] उवज्झाय[5] साहूणं[6]।' और नमो[1] अरिहंताणं[2] णमो[3] सिद्धाणं[4] इस तरह नमस्कार मंत्रके पदोंको गिननेसे दस पद होते है।' नमस्कार निर्युक्तिमें जो ८० पद प्रमाण बीस गाथाएं हैं वे नवकारका माहात्म्य बतलाती है किंतु नवकार-रूप नही है क्योंकि उनमे तो बहुतसे पद हैं, और नवकार तो नौ पद रूप ही है। फिर भी इन गाथाओंकी सौ दो सौ वर्षकी प्राचीन प्रतियोंमे 'हवइ' पाठ पाया जाता है। श्री मलयगिरिने भी आवश्यक सूत्रकी वृत्तिमें वे गाथाएँ 'हवइ' पाठके साथ ही उद्धृत की हैं। जो इसका निश्चय करना चाहें उसे वह वृत्ति देखना

नमो अरिहंताण'' भणित्वा पारयति। नवकारनिर्युक्तिचूर्णौ त्वेवमुक्त–तथाहि, सो नमुक्कारो कमा छ पयाणि वा दस वा। तत्थ छ पयाणि नमो अरिहत सिद्ध आयरिय-उवज्झाय साहूण त्ति। दश त्वेवं नमो[1] अरिहंताण[2] नमो[3] सिद्धाण[4] इत्यादि। यत्पुन नमस्कारनिर्युक्तौ अशीतिपदमाना विंशतिर्गाथाः सन्ति यथा–अरिहंत नमुक्कारो ···· इत्यादय·, ता नवकार-माहात्म्यप्रतिपादिका न पुनर्नवकाररूपा भवितुमर्हन्ति, बहुपदत्वात्तासा, नवकारस्य तु नवपदात्मकत्वात्। किञ्च तास्वपि गाथासु वर्षशतात् तद्द्वयाच्च पूर्वपूर्वतरप्रतिषु 'हवइ' इति पाठो दृश्यते। श्रीमलयगिरिणाऽप्यावश्यकवृत्ति कुर्वता वृत्तिमध्ये ता गाथा 'हवइ' इति पाठत एव लिखिताः। एतन्निश्चयार्थिना तद्वृत्ति निरीक्षणीया इति परमार्थ ज्ञात्वा कदाग्रहाभिनिवेशादिकलितं आगमं नुक्त होई इति मुक्त्वा साक्षात् परमागमसूत्रान्तर्गत श्रीवज्रस्वामिप्रभृतिदशपूर्वधरादिबहुश्रुतसंविग्न-संविहितव्याख्यासमादृत 'हवइ' इति पाठयुत अष्टषष्ठिवर्णप्रमाण परिपूर्णनवकारसूत्रमध्येतव्यम्।

चाहिये। अतः वास्तविकताको जानकर और आगममे कदाग्रहके अभिप्रायसे ऐसा लिखा है इस प्रकारके विकल्पको छोड़कर परमागम सूत्रके अन्तर्गत और वज्र स्वामी वगैरह श्रुतधरोंके द्वारा व्याख्यात और 'हवइ' इस पाठसे युक्त ६८ अक्षर प्रमाण पूर्ण नवकार सूत्रका पाठ करना चाहिये।'

इस टीकासे नीचे लिखी बातें स्पष्ट होती है—

१—महानिशीथ सूत्रके सिवा अन्य किसी भी उपलब्ध आगम सूत्रमे इस तरह नौ पद वाला नमस्कार मन्त्र नहीं पाया जाता।

२—सर्वत्र पाँच पद वाला नमस्कार मन्त्र ही पाया जाता है।

३—चूंकि अन्य आगम सूत्रमें पाँच पद वाला नमस्कार मन्त्र पाया जाता है अतः विद्वानोंमे पाँच पद और नौ पदको लेकर मतभेद रहा है।

किन्तु 'एसो पंचणमुक्कारो' इस पदसे इसे पञ्च नमस्कार बतलाया है तथा महानिशीथ सूत्रमे भी इसे 'पञ्च मङ्गल महाश्रुतस्कन्ध' नामसे ही अभिहित किया है और लिखा है—'इट्ठ देवयाणं च नमुक्कारो पञ्चमङ्गलमेव गोयमा!' अर्थात्—हे गौतम! पंच मङ्गल ही इष्ट देवताके नमस्कार रूप है। चूंकि इसमे पाचों परमेष्ठियोंको नमस्कार किया है इससे इसका एक नाम पचपरमेष्ठी मन्त्र भी अनेक ग्रन्थोंमे पाया जाता है। अत. पञ्च नमस्कार मन्त्र अथवा पञ्च परमेष्ठी मन्त्र या पंचमङ्गल ये ही मूल मन्त्रके प्राचीन नाम प्रतीत होते हैं। पीछेसे जब उसकी माहात्म्य सूचक चूलिकाको भी मूल मन्त्रके साथ भक्तिवश सम्मिलित कर लिया गया तो उसका नाम नवकार मन्त्र हो गया। इसीसे ऐसा भी उल्लेख मिलता है कि पंच पद नमस्कारसे नव पद नमस्कार एक भिन्न श्रुतस्कन्ध है, जैसा कि अभिधान राजेन्द्रमें (पृ० १८३५) उद्धृत है—

अर्थात्–'आम्नायमे[1] ऐसा प्रसिद्ध है कि पंच पदवाला नमस्कार मन्त्र समस्त श्रुतस्कन्धके अभ्यन्तर भूत है और समूल होनेसे नव-पदवाला मन्त्र एक जुदा श्रुतस्कन्ध है। इसकी (पंच नमस्कार मन्त्रकी) निर्युक्ति चूर्णि वगैरह पृथक् भी बहुत सी थीं। किन्तु जब काल पाकर उसका नाश हो गया तो पदानुसारी ऋद्धिके धारी बज्र स्वामीने मूलमूत्रमे उस नमस्कार मन्त्रको लिख दिया ऐसा महानिशीथ सूत्रके पाचवें अध्ययनमे लिखा है'।

इस विस्तृत चर्चा और उसमे दिये गये प्रमाणोंके आधारसे इसी परिणामपर पहुंचना पड़ता है कि—

१–मूल नमस्कार मन्त्र पंच[2] पदवाला ही है।

२–उसमें उसकी चूलिकाको सम्मिलित कर लेनेसे नौ पद हो जाते हैं।

३–किन्तु दोनो दो भिन्न श्रुतस्कन्ध हैं और नौ पदवालेमे पांच पदवाला समस्त श्रुतस्कन्धके अभ्यन्तर भूत होनेसे विशिष्ट है।

४–नमस्कार मन्त्र कहनेसे यद्यपि दोनोंका ग्रहण हो सकता है किन्तु उससे केवल पंच पदात्मक पंच नमस्कार मन्त्र अथवा पंच परमेष्ठी मन्त्र ही लेना चाहिये और नवकार मन्त्रसे नौ पदवाला

१–'पञ्चपदनमस्कारश्च सर्वश्रुतस्कन्धाभ्यन्तरभूता, नवपदश्च समूलत्वात् पृथक् श्रुतस्कन्ध इति प्रसिद्धमाम्नाये। अस्य हि निर्युक्तिचूर्ण्यादयः पृथगेव प्रभुता आसीरन्, कालेन तद्व्यवच्छेदे मूलसूत्रमध्ये तल्लेखन कृत पदानुसारिणा वज्रस्वामिनेति महानिशीथपञ्चमाध्ययने व्यवस्थितम्।' प्रति० ॥

२–सिंह तिलक सूरिने 'वर्धमान विद्याकल्प' मे लिखा है कि समस्त विद्याओंके प्रारम्भमें पूर्ण पञ्च नमस्कार मत्र पढना चाहिये यथा—'सर्व-विद्यास्मृतावादौ पूर्णा पंच नमस्कृतिः।' इससे भी स्पष्ट है कि पूरा नमस्कार मत्र पाच पदात्मक ही है।

यानी चूलिका सहित पंच नमस्कार मन्त्र लेना चाहिये। अतः नौ पद वाले मन्त्रका नाम नवकार मन्त्र और पांच पदवाले मन्त्रका नाम नमस्कार मन्त्र या पंच नमस्कार मन्त्र अथवा पंच परमेष्ठी मन्त्र है। दोनों ही मन्त्र आराध्य है।

इस तरह मन्त्रके स्वरूप और प्रसंग वश उसके नामकी मीमांसा करनेके पश्चात् मन्त्रके आराध्य पचपरमेष्ठीका स्वरूप बतलाया जाता है जिससे उनके स्वरूपको जानकर आराधक उनकी सच्ची उपासना कर सके। किन्तु उससे पहले प्रासंगिक चर्चासे सम्बद्ध एक अन्य चर्चा कर लेना आवश्यक है और वह है नमस्कार मन्त्रके पदोंके क्रमके बारेमें। अर्थात् नमस्कार मन्त्रके पद जिस क्रमसे रक्खे गये हैं वह क्रम क्या उचित है और यदि उचित है तो क्यों?

नमस्कार मन्त्रके पदोंके क्रमपर प्रकाश—

नमस्कार मन्त्रके क्रमके बारेमें श्वे० आवश्यक निर्युक्तिमे आक्षेप करते हुए एक आक्षेपकर्ता कहता है कि सूत्र या तो संक्षिप्त होता है या विस्तृत। संक्षिप्त जैसे सामायिक सूत्र, विस्तृत जैसे चौदह पूर्व। किन्तु यह नमस्कार सूत्र तो न तो संक्षिप्त ही है और न विस्तृत ही है। यदि यह संक्षिप्त होता तो उसमे सिद्ध और साधु इन दोको ही नमस्कार किया जाना चाहिये था; क्योंकि जो मुक्ततुल्य अरिहत वगैरह है उनका ग्रहण सिद्ध शब्दसे हो जाता और संसारियोका ग्रहण साधु शब्दसे हो जाता। यदि कहा जाय कि यह विस्तृत है तो भी ठीक नही है क्योंकि विस्तृत नमस्कार तो अनेक प्रकारका हो सकता है। अत· यह पंचनमस्कार युक्त नहीं है। गाथा इस प्रकार है—

णवि संखेओ न वित्थारो मंखेवो दुविहो सिद्धसाहूणं।
वित्थरओऽणेगविहो, पंचविहो न जुज्जइ तम्हा॥ १०१९॥

अभिधान राजेन्द्रमे नमस्कार मन्त्रके आर्षत्वकी चर्चा करते हुए इस गाथासे पहले जो उत्थानिका दी है वह उल्लेखनीय है। उससे ऐसा प्रतीत होता है कि श्वेताम्बर सम्प्रदायमें कुछ लोग ऐसे भी थे जिन्हें नमस्कार मन्त्रके आर्ष होनेमें आपत्ति थी। उसमें लिखा[१] है–'कुछ लोगोंका कहना है कि नमस्कार पाठ ही अनार्ष है—ऋषि प्रणीत नहीं है क्योंकि वह युक्ति रहित है। उसमें अरिहंतोंको पहले नमस्कार किया है किन्तु सिद्ध पूज्य है। अतः सिद्धोंसे पहले अरिहंतोंको नमस्कार नहीं किया जा सकता। तथा आचार्य वगैरह सब साधुओंको नमस्कार नहीं करते। अत. पांचवां पद ठीक नहीं है।' ऐसा कहनेवाले अतिपापी हैं, उनकी बात नहीं सुननी चाहिये, उनका मुँह तक नहीं देखना चाहिये। अपनी कपोल कल्पित आशंकासे एक व्यवस्थित सूत्रको नहीं त्यागा जा सकता।'

इस प्रकार कुत्सित आशंकाको दूर करते हुए नमस्कार पाठके प्रचलित क्रमका समर्थन निर्युक्तिकारने किया है। श्वेताम्बर सम्प्रदायमें नमस्कार सूत्रका व्यवच्छेद होना, वज्रसूरि द्वारा उसका उद्धार होना, पंचपद और नौ पदकी पृथक परम्परा, तथा किन्हींका उसे आर्ष न मानना, उधर दिगम्बर सम्प्रदायमे इन सब बातोंका न होना और एक आचार्यके द्वारा नमस्कार मन्त्रको आचार्य पुष्पदन्तकी कृति होनेका उल्लेख करना, ये सब बाते ऐसी है कि अन्वेषकको सन्देहमें डाल देती है, कि यह मंत्र दिगम्बर परम्परासे ही तो श्वेताम्बर परम्परामे नहीं गया है? अस्तु।

आक्षेपकने नमस्कार मन्त्रके क्रमपर जो आक्षेप किया है उसका परिहार करते हुए निर्युक्तिकारने लिखा है कि अरिहंत

१–ये तु वदन्ति नमस्कार पाठ एव नार्षः युक्तिरिक्तत्वात् पापिष्ठतरास्तेऽप्यनाकर्णनीयवाचोऽद्रष्टव्यमुखाः ॥ पृ० १८३५ ॥

वगैरह तो नियमसे साधु होते हैं, क्यों कि उनमे साधुके गुण भी पाये जाते हैं। किन्तु जो साधु होते हैं वे सभी अरिहंत वगैरह नहीं होते। उनमेंसे कुछ अरिहंत ही होते है, कुछ आचार्य होते हैं, कुछ उपाध्याय होते हैं और कुछ इन सबसे भिन्न केवल साधु ही होते है। अतः अरिहंत, आचार्य, उपाध्याय और साधु इन सबको एक 'साधु' नामसे नहीं कहा जा सकता। इसीसे साधुको नमस्कार करनेपर अरिहंत वगैरहको नमस्कार करनेका फल नहीं मिल सकता, क्यों कि 'साधु' पद तो सामान्य है। अतः जैसे मनुष्य मात्र अथवा जीव मात्रको नमस्कार करनेसे अरिहंत वगैरहको नमस्कार करनेका फल नहीं मिलता, वैसे ही साधुमात्रको नमस्कार करनेसे भी अरिहंत आदिको नमस्कार करनेका फल नहीं मिलता। अत. नमस्कार पाँच प्रकारका[1] ही है।

पुन आक्षेपक आपत्ति करता[2] है कि क्रम दो प्रकारका होता है–पूर्वानुपूर्वी क्रम दूसरा पश्चानुपूर्वी क्रम। इनके सिवा और कोई क्रम नहीं होता है। नमस्कार मन्त्रमे जो क्रम रक्खा गया है वह पूर्वानुपूर्वी क्रम नही है, क्यों कि सिद्धोंको पहले नमस्कार नहीं किया है जब कि पाँचो परमेष्ठियोंमें सर्वथा कृतकृत्य हो जानेके कारण सिद्ध ही प्रधान है और प्रधान ही पूज्य होता है। अतः सिद्धोंको पहले रक्खा जाना चाहिये था। इसलिए यह पूर्वानुपूर्वी क्रम तो नहीं। और पश्चानुपूर्वी क्रम भी नहीं है, क्योंकि पाँचों परमेष्ठियोंमे सबसे पीछे साधु आते है। अतः यदि साधुको पहले रखकर अन्तमे सिद्धोंको रक्खा जाये तो पश्चानुपूर्वी कही जा सकती है।

१–'अरिहंताई नियमा साहू साहू य तेसु भइयव्वा।
तम्हा पंचविहो खलु हेउनिमित्तं हवइ सिद्धो॥ १०२० ॥'

२–'पुव्वाणुपुव्वि न कमो नेव य पच्छाणुपुव्वि एस भवे।
सिद्धाईआ पढमा बीआए साहुणा आई॥ १०२१ ॥'

समाधान--नमस्कार मन्त्रमें पश्चानुपूर्वी ही क्रम है क्योंकि अरिहंतके उपदेशसे ही सिद्धोंका ज्ञान होता है, वैसे तो सिद्ध अत्यन्त परोक्ष है अत: अरिहंतोंको ही पहले रखना ठीक है।

आक्षेप--यदि इसलिए अरिहंतोको पहले रखा गया है तो आचार्यको पहले रखना ठीक होगा क्योंकि आचार्य वगैरहके उपदेशसे हम अरिहंतोंको जानते है।

समाधान--यद्यपि आचार्य वगैरह भी अरिहंतोंके विषयमें उपदेश देते है किन्तु आद्य उपदेशदाता तो अरिहंत ही है, आचार्य वगैरह तो उसीको दुहराते हैं अत: वे अनुभापक हैं, अरिहंतकी तरह स्वतंत्र उपदेष्टा नहीं हैं। अत. अरिहंतको ही पहले नमस्कार किया गया है।

आक्षेप--सिद्ध तो तीर्थंकरोंके भी पूज्य होते हैं क्योंकि जब तीर्थंकर दीक्षा लेते है तो सिद्धोंको नमस्कार करके ही सामायिक करते है।

समाधान--जब तीर्थंकर दीक्षा लेते है उस समय वे छद्मस्थ होते है अरिहंत नहीं होते। अत छद्मस्थ अवस्थामे तीर्थंकर भी सिद्धको नमस्कार करते है तो करें, उससे कोई आपत्ति नहीं आती; क्योंकि नमस्कार मन्त्रमे जो पहले अरिहंतोंको नमस्कार किया है सो अरिहंतसे मतलब छद्मस्थ तीर्थंकरोंसे नहीं है किन्तु जिनको केवलज्ञान हो गया है उन अरिहंतोंसे है। और सिद्ध आदिका स्वरूप बतलानेके कारण वे केवली अरिहंत सिद्धोंसे विशिष्ट हैं अत नमस्कार मंत्रमे अरिहंतको प्रथम नमस्कार किया गया है।

धवला[1] टीकामे भी षट्खण्डागमके प्रारम्भमें मंगल रूपसे निबद्ध नमस्कार मंत्रका व्याख्यान करते हुए क्रमकी चर्चा उठायी गयी है जो इस प्रकार है—

---

१ प्र० पु०, पृ० ५२।

आक्षेप—अरिहंतो और सिद्धोंने आत्मस्वरूपको प्राप्त कर लिया है, अतः उन्हें नमस्कार करना तो उचित है, किन्तु आचार्य वगैरहने तो आत्मस्वरूपको प्राप्त नहीं किया अतः उन्हें नमस्कार करना उचित नहीं है क्योंकि उनमें देवपना नहीं है ?

समाधान—यह आक्षेप उचित नहीं है, क्योंकि सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र रूप रत्नत्रयको ही देव कहते हैं और रत्नत्रयके अनन्त भेद हैं। अतः जो जीव रत्नत्रयसे विशिष्ट है वही देव है। इसीसे आचार्य वगैरह भी देव ही है क्यों कि उनमें रत्नत्रय पाया जाता है। शायद कहा जाय कि सिद्धोंके रत्नत्रयसे आचार्य आदिका रत्नत्रय जुदा है सो भी बात नहीं है। यदि उससे इसको भिन्न माना जायगा तो आचार्य आदिमें पाये जाने वाले रत्नत्रयका अभाव हो जायगा अर्थात् वह रत्नत्रय ही नहीं कहा जायगा। शायद कहा जाये कि सिद्धो और आचार्य आदिके रत्नत्रयमें कारण कार्यका भेद है, अर्थात् सिद्धोका रत्नत्रय आचार्य आदिके रत्नत्रयका कारण है, सो भी ठीक नहीं है, क्योंकि कर्मपटलके हटने पर आचार्य आदिमें रत्नत्रय स्वयं ही प्रकट होता है··· शायद कहा जाये कि सम्पूर्ण रत्नत्रय जिसमें पाये जायें वही देव होता है जिनमे उनका एक देश रहता है वे देव नहीं कहे जा सकते। किन्तु ऐसा कहना भी उचित नहीं हैं क्योंकि यदि एक देश रत्नत्रयके धारी देव नहीं है तो समस्त रत्नत्रयके धारियोंको भी देव नहीं कहा जा सकता। शायद कहा जाये कि आचार्य आदिमें जो रत्नत्रय है उससे सब कर्मोंका क्षय नहीं हो सकता क्यों कि वह एक देश है, सो भी कहना ठीक नहीं है क्यों कि पयालके ढेरको जलाकर राख कर देना अग्नि समूहका कार्य है किन्तु अग्निका एक कण भी उस कार्यको कर देता है। अतः आचार्य वगैरह भी देव है, यह बात निश्चित हो जाती है।

आक्षेप–समस्त कर्मोंसे रहित सिद्धोंके होते हुए अघाति कर्मसे युक्त अरिहंतको पहले नमस्कार कैसे किया ?

समाधान–सबसे अधिक गुणवाले सिद्धोंमें जो सबसे अधिक श्रद्धा हम लोगोंकी है उसके कारण अरिहंत ही है। यदि अरिहंत न होते तो हम लोगोंको सच्चे देव, सच्चे शास्त्र और सत्यपदार्थोंका ज्ञान नहीं होता। अरिहंतके प्रसादसे ही हमे यह ज्ञान प्राप्त हुआ है इसलिए उनके उपकारके कारण भी आदिमें अरिहंतोंको नमस्कार किया है क्योंकि इस प्रकारका पक्षपात बुरा नहीं है बल्कि शुभ पक्षमे रहनेसे वह कल्याणका ही कारण है।

अथवा आप्तकी श्रद्धासे ही आप्त, आगम और पदार्थोंके विषय मे दृढ़ श्रद्धा उत्पन्न होती है यह बतलानेके लिए भी अरिहंतोंको आदिमे नमस्कार किया है। क्योंकि कहा है—'जिसके समीप धर्म ज्ञान प्राप्त करे उसके समीप विनय युक्त हो प्रवृत्ति करे। तथा उसको सदा मन वचन और कायसे वा पञ्च ङ्गसे नमस्कार करे।

इस तरह श्वेताम्बर और दिगम्बर आगमोंमे नमस्कार मन्त्रके क्रमके विषयमे ऊहापोह करके उसे उचित और सयुक्तिक ठहराया गया है। ।

अब नमस्कार मंत्रका अर्थ बतलाते हुए मंत्रमे नमस्कार किये गये पंच परमेष्ठियोंका स्वरूप बतलाया जाता है, क्योंकि उसके बिना आराधक अपने आराध्योंका समुचित ध्यान नहीं कर सकता।

नमस्कार मंत्रका अर्थ—

अरिहंतोंको नमस्कार, सिद्धको नमस्कार, आचार्योंको नमस्कार, उपाध्यायोंको नमस्कार, लोकके सब साधुओंको नमस्कार। यह नमस्कार मन्त्रका शब्दार्थ है।

इस सम्बन्धमें धवला टीकामें इतना विशेष बतलाया है कि

'णमो लोये सव्व साहूणं' इस अन्तिम पदमें जो 'लोक' और 'सर्व' शब्द आये हैं वे अन्त दीपक है। अत. उनकी अनुवृत्ति पहलेके शेष चार पदोंमें कर लेनी चाहिये, जिसका उद्देश्य सम्पूर्ण क्षेत्रोंके त्रिकालवर्ती सब अरिहंत आदिको नमस्कार करना है। अर्थात् लोकके सब अरिहंतोंको नमस्कार हो, लोकके सब सिद्धोंको नमस्कार हो, इसी तरह पांचों पदोंका अर्थ जानना चाहिये।

यह तो केवल शब्दार्थ है, पूरा अर्थ जाननेके लिए तो अरिहत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, और साधुका स्वरूप जानना आवश्यक है। अत: क्रमसे उनका स्वरूप बतलाया जाता है।

अरिहंतका स्वरूप–

श्वे० आवश्यक निर्युक्तिकारने 'अरिहंत' शब्दकी व्युत्पत्ति इस प्रकार की है–

१–पांचो इन्द्रियोंके विषय, क्रोध मान माया और लोभ ये कषाय, बाईस प्रकारकी परीषह, शारीरिक मानसिक और दोनों रूप वेदना–तकलीफ-कष्ट, और उपसर्ग ये सब जीवनके शत्रु है। इन 'अरि' यानी शत्रुओंके जो हन्ता-नाशक है वे अरिहंत[1] कहे जाते है।

२–आठ प्रकारका कर्म सब जीवोंका शत्रु है। उन कर्म रूपी अरिका जो हंता-अर्थात्-नाशक है वह अरिहंत[2] है।

३–जो वन्दना और नमस्कारके तथा पूजा सत्कारके योग्य हैं और मोक्ष प्राप्त करनेके योग्य है उन्हें अरिहंत[3] कहते हैं।

१–इन्दियविसयकसाये परीसहे वेयणा ओ उवसग्गो।
ए ए अरिणो हन्ता अरिहता तेण वुच्चति ॥ ९१९ ॥

२–'अट्ठविह विअ कम्म अरिभूअ होइ सव्वजीवाण।
त कम्ममरिहता अरिहता तेण वुच्चंति ॥ ९२० ॥'

३–'अरिहति वदणनमसणाणि अरिहति पूअसक्कारं।
सिद्धिगमण च अरिहा अरहता तेण वुच्चति ॥ ९२१ ॥'

वे अरिहंत सब देवोंमें श्रेष्ठ हैं अतः देव असुर और मनुष्य सभी उनकी पूजा करते हैं तथा वे कर्म रूपी शत्रुओंके या कर्म रूपी रजके हन्ता है अतः उन्हें अरिहंत या अरहत कहते है।

लगभग इसी प्रकारकी निरुक्ति दिगम्बरोंके सिद्धान्तग्रन्थ धवला[४] टीकामें की गयी है जो इस प्रकार है—

१—नरक, तिर्यञ्च, कुमनुष्य और प्रेत योनिमें होने वाले समस्त दुःखोंकी प्राप्तिका कारण होनेसे मोहनीय कर्म अरि कहा जाता है। बाकीके सात कर्म तो उसीके अधीन हैं, मोहके चले जानेपर वे अपना अपना काम करनेमे असक्त हो जाते हैं। अतः सब कर्मोंमे प्रधान होनेसे मोह ही यथार्थमे 'अरि' है। उसका नाश कर देनेसे अरिहंत कहलाते है।

२—ज्ञानावरण और दर्शनावरण कर्म रजके समान है; क्योंकि ये दोनों त्रिकालवर्ती वस्तुओंके जाननेमे बाधक है। इनका नाश कर देनेसे अरिहंत कहे जाते है।

३—अन्तराय कर्मको रहस्य कहते है। शेष तीन घातिया कर्मोका नाश होनेपर अन्तराय कर्मका नाश अवश्य हो जाता है। और अन्तराय कर्मके नष्ट हो जानेपर अघातिया कर्म निःशक्त हो जाते है। उस अन्तराय कर्मका नाश कर देनेसे अरिहंत कहे जाते हैं।

४—अवतरण, जन्म, निष्क्रमण, केवल-ज्ञानोत्पत्ति और निर्वाण प्राप्तिके समय देवोंके द्वारा अतिशय पूजित होनेसे पूजाके योग्य होनेके कारण वे अर्हत् कहे जाते हैं।

इन निरुक्तियोंका सार इतना ही है कि जो कर्म रूपी शत्रुओंको नष्ट कर देता है वह अरिहंत कहा जाता है। इसका खुलासा इस प्रकार है—

यह पहले लिख आये हैं कि जैनधर्मका मुख्य ध्येय मोक्ष है।

४—प्र० पु०, पृ० ४४।

'मोक्ष' या मुक्तिका अर्थ होता है छूटना या छुटकारा। जैन धर्म मानता है कि प्रत्येक संसारी जीव अनादि कालसे कर्मोसे बंधा हुआ है। जितने जीव अब तक मुक्ति लाभ कर चुके है वे सभी पहले कर्मोसे बद्ध थे, पीछे मुक्त हुए। अत. ऐसा कोई जीव नहीं है जो कभी कर्मबन्धनमे न पड़ा हो और सदासे शुद्ध बुद्ध और निरञ्जन निर्विकार हो। प्रत्येक जीवकी अनादि दशा संसार है और सादि दशा मोक्ष है। अतः संसारी जीव अनादि कालसे संसारके चक्रमे पड़ा हुआ है और उससे इसका निकलना असाध्य तो नहीं किन्तु दुःसाध्य अवश्य है और उसका कारण इस प्रकार बतलाया[1] है—

"जो जीव संसारी है-यानी जन्म और मरणके चक्रमे पड़ा हुआ है उसके रागरूप और द्वेष रूप परिणाम अवश्य होते है। उन परिणामोंसे नये कर्म बंधते है। कर्म बन्ध होनेसे गतियोमे जाकर जन्म लेना पड़ता है। जन्म लेनेसे शरीर मिलता है। शरीरमे इन्द्रियाँ होती है। इन्द्रियोंसे वह विषयोंको ग्रहण करता है। विषयोंका ग्रहण करनेसे जो विपय उसे प्रिय लगते है उनसे वह राग करता है और जो विषय उसे अप्रिय लगते है उनसे वह द्वेष करता है। इस प्रकार संसाररूपी चक्रमे पड़े हुए जीवके भावोसे कर्मबन्ध और कर्मबन्धसे रागद्वेषरूप भाव

१— जो खलु ससारत्थो जावो तत्तो दु होद परिणामो।
परिणामादो कम्मं कम्मादो होदि गदिसु गदी ॥ १२८ ॥
गदिमधिगदस्स देहो देहादो इंदियाणि जायते।
तेहिदो विसयग्गहण तत्तो रागा व दोसो व ॥ १२९ ॥
जायदि जीवस्सेव भावो ससारचक्कवालम्मि।
इदि जिणवरेहि भणिदो अणादिणिधणो सणिधणो वा ॥१३०॥'
पञ्चास्तिकाय।

होते रहते हैं। यह चक्र अभव्य जीवोंके अनादि अनन्त है और भव्य जीवोंके अनादि सान्त है।

आशय यह है कि प्रायः सभी धर्म वाले यह मानते हैं कि प्राणी जैसा कर्म करता है उसे वैसा ही फल भोगना पड़ता है। जैनधर्म मानता है कि यह लोक २३ प्रकारकी पुद्गल वर्गणाओंसे भरा हुआ है। उन वर्गणाओंमें एक कार्मण वर्गणा भी है। जीवके अच्छे बुरे भावोंका निमित्त पाकर यह कार्मण वर्गणा कर्म रूप हो जाती है और जीवके साथ बंध जाती है। जैसा कि लिखा है–

"जब राग-द्वेषसे युक्त आत्मा अच्छे या बुरे कामोंमें लगता है तो कर्म रूपी रज ज्ञानावरणादि रूपसे उसमें प्रवेश करता है[1]"

जैन दर्शनमें जीवमें एक 'योग' नामकी शक्ति मानी गयी है। मन, वचन और कायका निमित्त पाकर यह शक्ति ही कर्मोंके लानेमें कारण होती है। हम जो कुछ सोचते हैं या बोलते हैं अथवा करते हैं उससे आत्माके प्रदेशोंमें एक प्रकारका कम्पन होता है। और उसके होनेसे कर्मपरमाणु हमारी ओर आकृष्ट होते हैं। तथा हमारे राग द्वेष मोह आदि भावोंका, जिन्हें जैनधर्ममें कषाय कहते हैं, निमित्त पाकर हमारी आत्मासे बध जाते हैं। इन कर्म परमाणुओंको जीव तक लानेका काम जीवकी योग शक्ति करती है और उसके साथ बन्ध करानेका काम कषाय करती है। जब कोई जीव राग द्वेषसे रहित हो जाता है तो योगके रहने तक उसमें कर्म परमाणुओंका आगमन तो होता है किन्तु कषायके न

१–'परिणमदि जदा अप्पा सुहम्मि असुहम्मि रागदोसजुदा।
तं पविसदि कम्मरयं णाणावरणादिभावेहि ॥ ९५ ॥'
–प्रवचन०

होनेसे वे कर्म आत्माके साथ ठहरते नहीं है, पहले समयमे आते हैं और दूसरे समयमे चले जाते है। समझनेके लिए योगको वायुकी, कषायको गोंदकी, जीवको एक दीवारकी और कर्म परमाणुओंको धूलकी उपमा दी जा सकती है। वायु जितनी तेज या मन्द होती है धूलि भी उतनी ही अधिक या कम उड़ती है। तथा यदि दीवारपर गोद लगी हो तो वायुके साथ उड़कर आनेवाली धूल दीवारपर चिपक जाती है। किन्तु यदि दीवार सूखी, चिकनी और साफ होती है तो धूलि दीवारपर न चिपककर तुरंत झड़ जाती है। अतः जैसे धूलका कम या अधिक परिमाणमें उड़कर आना हवाके वेगपर निर्भर है वैसे ही दीवारपर धूलिका थोड़े या अधिक दिनो तक चिपका रहना उसपर लगे गोद या गीली वस्तुओकी चिपकाहटपर निर्भर है। यदि दीवारपर पानी पड़ा हो तो उसपर लगी हुई धूल पानीके सूखते ही झड़ जाती है, यदि किसी पेड़का दूध लगा हो तो कुछ दिनोमें झड़ती है और यदि गोद लगा हो तो बहुत दिनोंमे झड़ती है। यही बात योग और कषायके सम्बंधमे जाननी चाहिये। यदि योग उत्कृष्ट होता है तो कर्म परमाणु भी अधिक परिमाणमे आकृष्ट होते है और यदि योग जघन्य होता है तो कर्म परमाणु भी कम परिमाणमे जीवकी ओर आते है। इसी तरह यदि कषाय तीव्र होती है तो कर्म परमाणु बहुत दिनों तक जीवके साथ बँधे रहते है और फल भी तीव्र देते हैं। यदि कषाय मन्द होती है तो कर्म परमाणु जीवके साथ कम समय तक बंधे रहते है और फल भी मामूली देते है यह एक साधारण नियम है। वैसे कुछ इसमे अपवाद भी है जिनको बतलानेके लिए यहाँ स्थान नहीं है। इस प्रकार जीवके ही योग और कषाय रूप भावोसे जीवके साथ प्रति समय कर्म पुद्गलोका बन्ध होता रहता है। और जैसे एक समयमे खाया हुआ भोजन पेटमे जाकर रस रुधिर आदिके रूपमें परिणत हो जाता है वैसे ही एक ही समयमे बंधे

हुए कर्म पुद्गल आठ कर्म रूपमे विभाजित हो जाते है। वे आठ कर्म हैं—ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय। ज्ञानावरण कर्म जीवके ज्ञान गुणको घातता है। उसीके कारण कोई जीव अल्पज्ञानी और कोई विशेष ज्ञानी देखा जाता है। दर्शनावरण कर्म जीवके दर्शन गुणको घातता है। ढांकनेवाली वस्तुको आवरण कहते है। चूँकि ये दोनों कर्म जीवके ज्ञान और दर्शन गुणको घातते है उन्हें प्रकट नहीं होने देते, अतः इन्हें आवरण कहा है।

वेदनीय कर्मके उदयसे जीव सांसारिक सुख दुखोको अनुभव करता है। मोहनीय कर्म जीवको मोहित कर देता है। इसके दो भेद है—एक दर्शन मोहनीय—यह जीवको सच्चे मार्गकी प्रतीत नहीं होने देता। और दूसरा चरित्र मोहनीय—सच्चे मार्गकी प्रतीति हो जानेपर भी जीवको उसपर चलने नहीं देता। आयु कर्म जीवको अमुक समय तक एक ही भवमें रोक रखता है। इसके समाप्त हो जानेको ही जीवकी मृत्यु कहा जाता है। नाम कर्मके उदयसे जीवका शरीर और अङ्गोपाङ्ग वगैरह बनते हैं। गोत्र कर्मके उदयसे जीव उच्च कुली या नीच कुली कहलाता है। अन्तराय कर्म जीवकी इच्छित वस्तुकी प्राप्तिमे बाधा डालता है।

इन आठ कर्मोंमे से ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय ये चार कर्म घाती कर्म कहलाते हैं, क्योंकि ये जीवके स्वाभाविक गुणोका घात करते है। शेष चार कर्म अघाती है क्योंकि वे जीवके गुणोंको नहीं घातते। इन आठों कर्मोंके भी १४८ भेद है।

इन सब कर्मोंमें प्रधान कर्म मोहनीय है और उस मोहनीयमें भी दर्शन मोहनीय है। जब तक जीवके दर्शनमोहका उदय रहता है उसे अपने हित अहितका ज्ञान नहीं होता। आत्म हितमें उसको

रूचि ही नहीं होती। भले ही वह शास्त्रोंका पण्डित हो जाय, और सब कुछ छोड़ कर साधु भी बन जाय किन्तु यदि उसने दर्शन-मोहरूपी ग्रन्थिका भेदन नहीं किया तो सब कुछ करके भी उसने कुछ नहीं किया, इसीसे एक कविने कहा है—

'जिसके हृदय सम्यक्त्व नहीं करनी करी तो क्या करी।'

अतः ससारकी जड़ काटनेके लिए सबसे प्रथम इस दर्शन-मोहको उखाड़ कर फेकना चाहिये। इसके नष्ट होते ही आत्मामें यह दृढ़ प्रतीति होती है कि—

"एक नित्य निर्मल ज्ञान स्वरूप आत्मा ही मेरी है शेष सब पदार्थ मुझसे भिन्न है, वे सदा रहनेवाले नहीं हैं कर्मके उदयसे प्राप्त हुए है।"[1] वह सोचता है—

'यस्यास्ति नैक्यं वपुषापि सार्द्धं
तस्यास्ति किं पुत्र कलत्र मित्रैः।
पृथक् कृते चर्मणि रोम कूपाः
कुतो हि तिष्ठन्ति शरीर मध्ये॥'

अर्थात्–जिस आत्माका शरीरके साथ भी ऐक्य नहीं है, अर्थात् जो आत्मा अपने शरीरसे भी भिन्न है उसका पुत्र मित्र और पत्नीसे कैसा सम्बन्ध ? यदि शरीरसे चमड़ा अलग कर दिया जाय तो शरीरमे रोम कूप कैसे रह सकते है ? अर्थात् जैसे रोम कूप–छिद्र चमड़ेमे होते हैं। यदि चमड़ेको शरीरपर से उतार दिया जाय तो शरीरमे रोम कूप कैसे रह सकते है वैसे ही पुत्रादिकका सम्बन्ध

१–'एकः सदा शाश्वतिको ममात्मा
विनिर्मलः साधिगम स्वभावः।
बहिर्भवाः सन्त्यपरे समस्ता
न शाश्वताः कर्मभवाः स्वकीयाः॥'

इस शरीरके साथ है। किन्तु जब शरीर ही अपना नहीं तो पुत्रादि अपने कैसे हो सकते हैं? 'यतः यह आत्मा इस संसार रूपी वनमे इस संयोगके कारण ही अनेक प्रकारका दुःख भोगता है, अतः जो आत्म-हितकारी मोक्षको प्राप्त करना चाहता है उसे मन वचन और कायसे इस संयोगको छोड़ना चाहिये[१]।'

इस तरह आत्मामें भेद विज्ञानके जगते ही प्राणीका सन्तप्त चित्त चन्दनकी तरह शीतल हो जाता है और वह मोक्षके मार्गपर चलनेके लिए उत्सुक हो उठता है। उसे खाते पीते चलते फिरते और सोते जागते एक ही धुन रहती है कैसे शिव-नारीका वरण करूँ। अब उसका मन किसी सांसारिक कार्यमे नहीं लगता। गृहस्थीमें रहते हुए भी वह ऐसे रहता है जैसे पानीमे कमल। उसकी यह वृत्ति दिनपर दिन बढ़ती जाती है और एक दिन ऐसा आता है कि वह सब परिग्रहोको छोड़कर आत्म विभोर हो मोक्षकी साधनाके लिए निकल पड़ता है। अब उसके लिए शहर और जंगल, कुटुम्बी और पराये, महल और श्मशान, कोमल शय्या और पत्थरकी शिला सब समान हो जाते हैं! उसे बाह्य शत्रुओकी चिन्ता नहीं है, अब वह अपनी आत्मामें बैठे हुए कर्म शत्रुओको ही अपना वास्तविक शत्रु समझता है और उत्तम क्षमासे क्रोधपर उत्तम मार्दवसे मानपर, उत्तम आर्जवसे मायापर और उत्तम शौचसे लोभपर विजय प्राप्त करके धीरे धीरे दर्शन मोहके सहोदर चारित्र मोहको भी नष्ट कर डालनेका प्रयत्न करता है। जहाँ उसमे बलवती आत्मकल्याणकी भावना है वहीं वह सांसारिक दुःखोंसे पीड़ित

१—'सयोगतो दुःखमनेकभेद
यतोऽश्नुते जन्मवने शरीरी।
ततस्त्रिधाऽसौ परित्रर्जनीयो
यियासुना निर्वृतिमात्मनीनाम्॥'

और अज्ञान रूपी अन्धकारमें पड़े हुए प्राणियोंके उद्धारके लिए भी उत्सुक रहता है। उसके चित्तमे रह रह कर यह भावना उठती है कि कैसे इन प्राणियोका उद्धार हो। इस महती लोक कल्याणकी भावनासे वह तीर्थङ्कर नाम कर्मका बन्ध करता है और आयु पूरी होनेपर स्वर्गलोकमें महर्द्धिक देव होता है वहाँ भोगोपभोगके अनेक साधन रहनेपर भी उसका अधिक समय देव पूजा, जिनालयोंकी वन्दना, धार्मिक महोत्सवोंका अवलोकन और धर्म श्रवणमें ही बीतता है। सभी देव उसका आदर करते हैं। जब उसकी आयु छह मासकी शेष रह जाती है तो मनुष्य लोकमे जहाँ वह जन्म लेनेवाला होता है, अनेक मांगलिक कृत्य होने लगते हैं। उसके माता पिताको सेवाके लिए इन्द्रके आदेशसे देव देवांगनाएँ सदा तत्पर रहती हैं। छह माह पूरे होनेपर एक दिन माताको रात्रिके पिछले प्रहरमें शुभ सूचक स्वप्न दिखायी देते हैं और वह देव स्वर्गसे चलकर माताके गर्भमे आ जाता है। नव मास पूर्ण होनेपर बालकका जन्म होता है। उस समय तीनों लोकोमे आनन्द छा जाता है। सदाके दुखी नारकियोंको भी क्षण भरके लिए साता मिल जाती है। इन्द्रका आसन डोल उठता है। तब इन्द्र अवधि-ज्ञानसे तीनों लोकोंके स्वामी जगद् गुरू तीर्थङ्करका जन्म हुआ जानकर तुरंत आसनसे उठकर और सात-आठ कदम चलकर जिस दिशामें तीर्थङ्कर होते है उस दिशामे नमस्कार करता है और बड़ी विभूतिके साथ मनुष्य लोकमें आकर भगवान् तीर्थङ्करका जन्म कल्याणक मनाता है।

बालक धीरे-धीरे बढ़ कर युवा हो जाता है। जन्मसे ही तीन ज्ञानका धारी होनेके कारण सब विद्याएं उसे अनायास ही प्राप्त हो जाती है बड़े-बड़े ज्ञानियोकी शंकाएं उसे देखते ही शान्त हो जाती है। युवा देखकर मोही माता-पिता उसे विवाह-बन्धनमें

बांधना चाहते हैं, किन्तु उसके चित्तमें तो स्व-पर कल्याणकी भावना जागृत रहती है। अतः वह इस व्यामोहमे न पड़ कर, और यदि माता-पिताका आग्रह हुआ तो उस कर्त्तव्यको भी पूरा करके सब विभूतिको छोड़कर जगत्के उद्धारके लिए एकाकी प्रव्रजित होता है।

भगवान्के प्रव्रजित होनेकी बात ज्ञात होते ही सबसे प्रथम लौकान्तिक देव आते हैं और इस शुभ विचारका अभिनन्दन करके चले जाते है। इसके बाद इन्द्र देव परिवारके साथ पधारते हैं। और भगवान्को शिबिकामें बैठा कर वनकी ओर ले जाते हैं। वहाँ भगवान् सब परिग्रहका त्याग करके केशलोंच करते है और आत्मध्यानमें लीन हो जाते है। न वे किसीसे बोलते है और न किसीको कुछ उपदेश देते हैं। केवल आत्मसाधनामें मग्न रहते है। वर्षोंकी कठोर साधनाके पश्चात् एक दिन ऐसा आता है कि दर्शन मोहका सहोदर भाई चारित्रमोह कर्म भी समूल नष्ट हो जाता है।

समस्त मोहके नष्ट होते ही कर्मोंकी सेनामें खलबली मच जाती है और एक मुहूर्त भी बीतने नहीं पाता कि ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय कर्म एक साथ नष्ट हो जाते है। इन घाति कर्मोंके नष्ट होते ही आत्माके स्वाभाविक गुण ज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्य उसी तरह चमक उठते है जैसे सुमैल सोनेको अग्निमे डाल कर तपानेके बाद मैल दूर होते ही उसके गुण चमक उठते हैं। इससे पहले भगवान् नामके ही तीर्थंकर भगवान् थे। किन्तु अब वे सचमुचमें तीर्थंकर हो जाते और कर्म शत्रुओंको नष्ट कर डालने से 'अरिहंत' 'जिन' आदि कहे जाते हैं।

ज्ञान कल्याणका महोत्सव मनानेके लिए इन्द्र पुनः सपरिवार पधारते हैं। इन्द्रके आदेशसे भगवान्की उपदेश सभा, जिसे समवसरण कहते हैं, रची जाती है। भगवान्का उपदेश सुननेके लिए

देव, मनुष्य, पशु पक्षी सभी पहुँचते हैं और आपसका वैर विरोध भूलकर अपनी-अपनी बोलीमे भगवानका उपदेश सुनते है। जहाँ जहाँ भगवान्का विहार होता है वहाँ वहाँ ऐसी ही सभाका आयोजन होता है। ये भगवान् ही अरिहंत परमेष्ठी होते है।

अरिहंत परमेष्ठीके ४६ गुण बतलाये हैं—आठ प्रातिहार्य ४ अनन्त चतुष्टय और ३४ अतिशय।

जब अरिहंतदेव समवशरणमें विराजते है तो उनके नीचे एक १—रत्नमय सिंहासन रहता है २—पीछे अशोकवृक्ष रहता है, ३—पीठके पीछे भामण्डल होता है ४—सिरपर तीन छत्र होते हैं ५—दोनों ओर खड़े होकर यक्ष चौसठ चमर ढोरते है ६—चारो ओर फूलोंकी वर्षा होती है ७—उनकी वाणी एक योजन तक सुनायी पड़ती है और ८—आकाशमें बाजे बजते रहते हैं। ये आठ प्रातिहार्य है।

अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्तसुख और अनन्तवीर्यके वे स्वामी होते हैं। ये चार अनन्त चतुष्टय हैं। ३४ अतिशयोंके विषयमें मतभेद है। दिगम्बर १० अतिशय जन्मसे मानते है, दस केवल ज्ञानके प्रभावसे मानते है और १४ देवकृत मानते है। श्वेताम्बरोंमे ४ अतिशय जन्मसे माने जाते हैं; शेषमे से एक मतानुसार १५ अतिशय केवलज्ञान कृत तथा १५ देवकृत होते है दूसरे मतसे ११ अतिशय केवलज्ञान कृत और १९ अतिशय देवकृत होते हैं।

अरिहंत भगवान्का शरीर जन्मसे ही बड़ा सुन्दर होता है (१) उसमे से बड़ी अच्छी सुगन्धि आती है (२) उसमें पसीना नहीं आता (३) मलमूत्र भी नहीं होता (४) शरीरमें अतुल्य बल होता है (५) रक्त दूधके समान सफेद होता है (६) वे सबसे मीठे वचन बोलते हैं (७) शरीर सुडौल होता है (८) शरीरके हाड़ वगैरह वज्रके समान होते हैं (९) शरीरमें १००८ लक्षण होते हैं ये दश

अतिशय जन्मसे ही होते है। जब उन्हें केवलज्ञान हो जाता है तो उस समयसे जहाँ भगवान् होते हैं उस स्थानसे चारों ओर सौ, सौ योजन तक सुकाल रहता है (१) भगवान् पृथ्वीपर न चलकर आकाशमें गमन करते है (२) देखनेवालोको चारों तरफ उनका मुख दिखलायी देता है (३) उनपर कोई उपसर्ग नहीं कर सकता (४) उनके शरीरसे किसी भी जीवका घात नहीं होता (५) वे आहार नहीं करते (६) उनकी पलकें नही झपकतीं (७) उनके बाल और नाखून नहीं बढ़ते है (८) शरीरकी परछाई नहीं पड़ती (९) वे समस्त विद्या और शास्त्रोंके ज्ञाता होते है (१०) ये दस अतिशय केवलज्ञान होने पर प्रकट होते हैं।

भगवान अर्धमागधी भाषामें अपना उपदेश देते है (१) समस्त जीव मित्रता पूर्वक समवसरणमे बैठते हैं (२) दिशाएँ निर्मल रहती हैं (३) आकाश निर्मल रहता है (४) सब ऋतुके फलफूल और धान्य एक साथ फलते हैं (५) एक योजन तक पृथ्वी दर्पणकी तरह निर्मल रहती है (६) जब भगवान् चलते हैं तो उनके चरणोके नीचे स्वर्ण कमल बन जाते है (७) आकाशमे जय जय होता हो (८) मन्द मन्द सुगन्धित वायु वहती है (९) सुगन्धित जलकी बूंदे टपकती रहती है (१०) भूमि कण्टक रहित होती है (११) समस्त प्राणी प्रसन्न रहते है (१२) भगवान्के चलते समय उनके आगे धर्मचक्र चलता है (१३) तथा छत्र, चमर, ध्वजा, घंटा वगैरह अष्ट मंगल द्रव्य साथ रहते है (१४) ये १४ अतिशय देव करते है। इस प्रकार दिगम्बरोकी मान्यतानुसार ३४ अतिशय होते है।

श्वेताम्बरों की मान्यताके अनुसार इस प्रकार ३४ अतिशय कहें हैं—अरहंत भगवानका शरीर अद्भुत रूपवाला, सुगन्ध युक्त, नीरोग और पसीनेसे रहित होता है (१) श्वास कमलकी तरह

सुगन्धित होता है (२) रुधिर और मांस दूधकी तरह सफेद रहता है (३) आहार और नीहार अदृश्य होते हैं (४) ये चार अतिशय जन्मसे ही होते हैं।

समवसरणकी भूमिमें मनुष्य देव और पशु पक्षी सब आरामसे बैठते हैं (१) उनकी अर्धमागधी भाषा उपस्थित सब श्रोताओंकी भाषामें बदल जाती है अर्थात् भगवान् अर्धमागधीमें उपदेश देते हैं और सब श्रोता अपनी बोलीमें उसे सुन लेते हैं (२) सिरके पीछे सूर्यको भी तिरस्कृत करने वाला भामण्डल होता है (३) जहाँ भगवान् होते हैं वहाँसे १०० योजन तक कोई रोग नहीं रहता (४) कोई वैर विरोध नहीं होता (५) ईति—धान्य वगैरहको हानि पहुँ-चाने वाले जीव जन्तुओंका उपद्रव नहीं रहता (६) मारी नहीं रहती (७) अतिवृष्टि नहीं होती (८) अवृष्टि नहीं होती (९) दुर्भिक्ष नहीं पड़ता (१०) तथा स्वराष्ट्र और परराष्ट्रका भय नहीं रहता (११) ये ११ अतिशय घातिकर्मोंके क्षय हो जानेसे प्रकट होते हैं। आकाशमें धर्मका प्रकाश करने वाला धर्मचक्र होता है (१) चमर ढोरे जाते हैं (२) निर्मल सिंहासन होता है (३) तीन छत्र होते हैं (४) रत्नमयी ध्वजा होती है (५) पैर रखनेके लिए स्वर्णकमल होते हैं (६) समवसरणमें रत्नमयी, स्वर्णमयी और रजतमयी तीन प्राकार होते हैं (७) चारों ओर भगवान्का मुख दिखलायी देता है (८) अशोक वृक्ष होता है (९) कांटे नहीं लगते उनका मुख नीचेकी ओर हो जाता है (१०) वृक्ष नम्र हो जाते हैं (११) आकाशमें दुन्दुभीका शब्द होता है (१२) वायु सुखद बहती है (१३) पक्षी प्रदक्षिणा पूर्वक गमन करते हैं (१४) गन्धोदककी वर्षा होती है (१५) पाँच वर्णके फूलोंकी जंघातक ऊँची वर्षा होती है (१६) भगवान्के नख केश नहीं बढ़ते (१७) भगवान्के समीपमें चारों निकायोंके कम-से-कम एक कोटि देवता रहते हैं (१८) सब ऋतुओंके फल फूल

फलते हैं (१९) इस तरह ३४ अतिशय भगवान्‌के होते हैं। उनकी वाणीके भी ३५ अतिशय बतलाये हैं।

सारांश यह है कि जो चार घातिकर्मोंको नष्ट कर देता है, और घाति कर्मोंके नष्ट हो जानेसे जो स्वाभाविक शुद्ध अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख और अनन्त वीर्यसे युक्त है, तथा सात धातुओंसे रहित परम औदारिक शरीरमे विराजमान है, १८ दोषोसे[1] रहित है उस शुद्ध आत्माको अरिहंत कहते है। उसका सदा ध्यान करना चाहिये। जैसा कि कहा है—

णट्ठ चदु घाइकम्मो दंसणसुह णाण वीरियमइयो।
सुहदेहत्थो अप्पा सुद्धो अरिहो विचिंतिज्जो॥ ५०॥

—द्रव्यसंग्रह

इन अरिहंत भगवान्‌के अनेक नाम हैं। ये परमपदमें विराजमान होते हैं इस लिए इन्हें परमेष्ठी कहते है। इनका ज्ञान निरावरण और सर्वोत्कृष्ट होता है अतः इन्हें परमज्योतिः कहते है। रागसे रहित होनेके कारण विराग कहते है। कर्म बन्धनसे रहित होनेके कारण 'विमल' कहते हैं। चूंकि वे अपने जीवनका अन्तिम लक्ष्य प्राप्त कर चुके हैं और उन्हें कुछ करना शेष नहीं है, इस लिए 'कृती' कहे जाते है। समस्त पदार्थोंको जाननेके कारण 'सर्वज्ञ'

१—दिगम्बर और श्वेताम्बर आम्नायमे १८ दोषोंके सम्बन्धमे भी मत भेद है। श्वेताम्बर मान्यताके अनुसार अज्ञान, मद, क्रोध, मान, माया, लोभ, रति, अरति, निद्रा, शोक, असत्य, चोरी, मात्सर्य, भय, हिंसा राग-क्रीडा और हास्य ये १८ दोष है, और दिगम्बर मान्यताके अनुसार भूख, प्यास, भय, द्वेष, राग, मोह, चिन्ता, बुढापा, रोग, मृत्यु, खेद, स्वेद, मद, अरति, आश्चर्य, जन्म, निद्रा और विषाद—ये १८ दोष हैं, जो अरहंतोंमें नही होते हैं।

कहे जाते हैं। सबके हितकर्ता होनेसे 'सार्व' कहे जाते हैं। और पूर्वापर विरोधसे रहित वस्तु स्वरूपका यथार्थ कथन करनेके कारण 'शास्ता' कहलाते है। जो मनुष्य भाव पूर्वक इन अरिहंत भगवानको नमस्कार करता है वह भवबन्धनसे छूट जाता है।

सिद्ध परमेष्ठीका स्वरूप-

भव परम्परासे चले आये हुए आठो कर्मोंकी सन्तानको उक्त उपायोंके द्वारा कृश करते-करते जो उनको तीव्र ध्यान रूपी अग्निके द्वारा उसी प्रकार जला डालता है जैसे स्वर्णकार स्वर्णके मैळको, उसे सिद्ध परमेष्ठी कहते हे। इसका खुलासा इस प्रकार है—

चार घाति कर्मोंको नष्ट करके जब कोई आत्मा अरहंत हो जाता है तो वह निरीह[1] भावसे सर्वत्र विहार करके जीवोंको कल्याण मार्गका उपदेश देता रहता है। अब उसके केवल ४ अघाति कर्म शेष रह जाते है। और उनको वह एक साथ ही नष्ट करता है।

अब प्रश्न यह होता है कि यदि बाकी बचे चारो कर्मोंकी स्थिति समान हो तो चारो कर्मोंका क्षय एक साथ हो सकता है, किन्तु यदि उनकी स्थिति विषम हुई तो चारोका क्षय एक साथ कैसे हो सकता है? अर्थात् यदि आयु कर्मकी स्थिति थोड़ी हुई और शेष तीन कर्मोंकी स्थिति अधिक हुई तो आयु कर्म पहले नष्ट हो जायगा और उस स्थितिमे शेष कर्म बाकी रह जावेंगे। तब वह मुक्त कैसे कहलायेगा?

इसका समाधान यह है कि जिस अरहतके चारों कर्मोंकी स्थिति समान होती है वह तो विना ही समुद्घात किये चारों कर्मोंको एक साथ नष्ट करके सिद्ध हो जाता है। किन्तु जिसकी आयु थोड़ी होती है और शेष तीन कर्मोंकी स्थिति अधिक होती

है वह समुद्घातके द्वारा उनकी स्थितिको आयु कर्मकी स्थितिके समान कर लेता है।

आशय यह है कि जब एक अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आयु शेष रह जाती है तब केवली समुद्घात करते हैं। समुद्घातके लिए वे सबसे प्रथम समयमें आत्म प्रदेशोंको दण्डके आकारमें लोकके एक छोरसे दूसरे छोर तक फैलाते हैं। दूसरे समयमे पूर्व और पश्चिममें लोकान्त तक फैला कर कपाटकी तरह कर देते हैं। तीसरे समयमें उसे ही दक्षिण-और उत्तर दिशाकी ओर फैलाकर मथानीके आकार कर देते है। ऐसा करनेसे लोकका बहुभाग उनके आत्म प्रदेशोंसे भर जाता है। चौथे समयमें समस्त लोक को पूर कर लोक-पूरण कर देते हैं। लोकपूरण होनेके पश्चात ही पांचवें समयमें जीवके प्रदेशोंको संकोचकर मथानी रूप कर देते है। छठे समयमें मथानीसे कपाटके रूपमें संकुचित करदेते हैं। सातवें समयमें कपाटसे दण्डके रूपमें संकुचित करदेते हैं और आठवे समयमें दण्डका स संकोच करके शरीरस्थ होजाते हैं। जैसे गीली साड़ीको तान देनेसे वह जल्दी सूख जाती है वैसे ही समुद्घातके द्वारा जल्द ही विशिष्ट कर्मोंकी स्थितिका समीकरण हो जाता है।

इसके बाद योगका निरोध करते हैं क्यों कि तीनों ही योग बन्धके कारण हैं। योगका निरोध होते ही समस्त कर्मोंका संवर होजानेसे शीलके स्वामी होजाते हो। 'अ इ उ ऋ लृ' इन पांच ह्रस्व अक्षरोंको न तो अति शीघ्रतासे और न अति देरसे उच्चारण करनेमें जितना समय लगता है उतना ही काल शैलेशी अवस्था का है। काययोगका निरोध होनेके समयसे लेकर केवली सूक्ष्म-क्रिया-निवृत्ति रूप शुक्ल ध्यानको ध्याते हैं और शैलेशी अवस्थामें समुच्छिन्न-क्रिया-प्रतिपाति ध्यानको ध्याते हैं। यद्यपि मनोनिरोधका नाम ध्यान है और केवलीके मन नहीं रहता अतः वहाँ ध्यान

शब्दका वास्तविक अर्थ नहीं पाया जाता, फिर भी ध्यानका कार्य-कर्म निर्जरा बराबर होती है अतः ध्यान माना जाता है।

समुच्छिन्न-क्रिया-प्रतिपाति ध्यानके द्वारा बाकी बचे चार कर्मोंको समूल नष्ट करके वे सिद्ध हो जाते हैं और सिद्ध होते ही ऊर्ध्व गमन करते हैं। जैसे तुम्बीके ऊपरसे मिट्टीका भार उतर जानेपर वह स्वभावसे ही ऊपरको जाती है, वैसे ही कर्मका भार उतर जानेपर सिद्ध जीव भी ऊपरको ही जाता है। जैसे आतपसे सूखकर बीजकोशके फट जानेसे ऐरण्डफलके बीज ऊपरको ही जाते हैं वैसे ही कर्म बन्धनके कट जानेसे जीव भी ऊपरको ही जाता है। अथवा जैसे अग्निकी लपट स्वभावसे ऊपरको ही जाती है वैसे ही जीव भी स्वभावसे ही ऊपरको जाता है।

ऊपर लोकके अग्रभागमें मनुष्य लोकके बराबर परिमाण वाला सिद्ध क्षेत्र है। उसका आकार उत्तान छत्रकी तरह है। यहाँसे मुक्त होनेके बाद जीव जिस अवस्थामें मुक्त होता है—बैठा हुआ या खड़ा हुआ, वही आकार उसका मुक्त होनेपर रहता है। केवल अवगाहना मूल शरीरसे कुछ कम हो जाती है; क्योंकि शरीरमें कुछ स्थान खाली होता है। जब योग निरोध होता है तो वे खाली भाग भर जानेसे अवगाहना कम हो जाती है।

हाँ, तो मुक्त होनेके बाद सिद्ध जीव तुरन्त ऊर्ध्व गमन करता है और लोकके अन्त तक जाकर सिद्ध क्षेत्रपर ठहर जाता है; क्योंकि गतिमें सहायक धर्म द्रव्य लोकान्त तक ही पाया जाता है, आगे नहीं पाया जाता है। और उसके विना जीवका गमन नहीं हो सकता। अतः मुक्तजीव सिद्ध क्षेत्रपर विराजमान हो जाता है। इसी तरह जितने भी जीव मुक्त होते है सब ऊर्ध्व गमन करके लोकान्तमें स्थिर होते जाते हैं। चूँकि जीव अमूर्तिक है अतः स्थानके घिरनेका कोई प्रश्न ही नहीं है। इसीसे जहाँ एक सिद्ध

परमेष्ठी विराजमान हैं वहीं अनन्त सिद्ध परमेष्ठी विराजमान हो सकते हैं और हैं।

वे सिद्ध वहाँसे कभी भी लौट कर नहीं आते, क्योंकि न वहाँ मृत्यु है, न बुढ़ापा है, न संयोग वियोग है और न रोगादिक है। ये सब चीजें शरीरसे सम्बन्ध रखती हैं और मुक्त अशरीरी होते हैं। इसीसे कहा है–

जाइजरामरणभया संजोगविओगदुःखसंरणाओ।
रोगादिगा य जिस्से ण संति सा होदि सिद्धगई ॥१५२॥

–गोम० जीव०

अर्थात् जिसमे जन्म, जरा मरणका भय, संयोग वियोगका दुःख और रोग वगैरह नहीं होते वह सिद्धगति है।

संक्षेपमें सिद्ध परमेष्ठीका स्वरूप इस प्रकार कहा है–

अट्ठविहकम्मवियला सीदीभूदा णिरंजणा णिचा।
अट्ठगुणा किदकिचा लोयग्ग णिवासिणो सिद्धा ॥६८॥

–गोम० जीव०

'जो आठ कर्मोंसे रहित हैं, अनन्त सुखमे मग्न हैं, निरंजन हैं, नित्य हैं, आठ गुणोंसे सहित है, कृतकृत्य हैं और लोकके अग्र-भागमें रहते हैं वे सिद्ध परमेष्ठी हैं।

सिद्धोंके ये सभी विशेषण सार्थक हैं और अन्य मतावलम्बियोंने मुक्त जीवका जो स्वरूप माना है उसको दृष्टिमे रख कर ही दिये गये हैं। इनका खुलासा इस प्रकार है—

'सदा शिव'वादी आत्माको सदा कर्मसे रहित मानते हैं— ईश्वरको नित्य मुक्त मानते हैं। किन्तु जैन दर्शनका कहना है—

नास्पृष्टः कर्मभिःशश्वद् विश्वदृश्वाऽस्ति कश्चन ।
तस्यानुपायि सिद्धस्य सर्वथा नुपपत्तितः ॥ ८ ॥
—आप्त परीक्षा

'कोई सर्वद्रष्टा सदासे कर्मोंसे अछूता हो नहीं सकता क्यों कि बिना उपायके उसका सिद्ध होना किसी भी तरह नहीं बनता ।

जितने भी मुक्त जीव है वे सब पहलेसे कर्म बद्ध थे। कर्मोंको काट कर ही उन्होंने सिद्ध पद प्राप्त किया है । अतः सिद्ध वही है जो आठों कर्मोंसे मुक्त हो चुका है ।

सांख्य वगैरह मुक्तावस्थामें सुख नहीं मानते । किन्तु जैन दर्शनका कहना है कि सच्चा सुख तो मुक्तावस्थामें है, क्यों कि सुख आत्माका गुण है जो संसार अवस्थामें विभाव रूप परिणमन करता है । विभाव अवस्थाके समाप्त होते ही स्वाभाविक सुख प्रकट हो जाता है संसार अवस्थामें जिसे हम सुख मानते है वह सुख नहीं है किन्तु दुःख है क्योंकि—

'सपर बाधा सहिय विच्छिन्न बंध कारण विसम ।
ज इंदियेहि लद्ध त सौक्ख दुक्खमेव तहा ॥'

'जो दूसरेकी सहायतासे होता है, जिसके बीचमें अनेक बाधाएं है, जो होकर पुनः नष्ट हो जाता, जिसके भोगनेसे कर्मका बन्धन होता है, जो कभी कम और कभी अधिक होता है तथा जिसे इन्द्रियोंके द्वारा प्राप्त किया जाता है वह सुख; सुख नहीं है बल्कि दुःख ही है ।'

सुख वह है जो बिना बाह्य वस्तुओंके अपने ही अन्दरसे प्राप्त होता है और एक बार प्राप्त होनेपर फिर कभी अस्त नहीं होता । इसीसे कविवर दौलतरामजीने कहा है—

आतमको हित है सुख, सो सुख आकुलता विन कहिये ।
आकुलता शिव माहि न तातें शिव मग लाग्यो चहिये ॥—छहढाला

अर्थात् आत्माका हित सुख है। और सुख उसे कहते हैं जिसमें किसी तरहकी आकुलता न हो। मोक्षमें कोई आकुलता नहीं है अतः मोक्षके मार्गमे ही लगना चाहिये, अस्तु

मस्करी नामका दार्शनिक मानता है कि–मुक्त जीव मुक्तिसे पुनः लौट आते हैं। किन्तु जैन दर्शन ऐसा नहीं मानता, क्योंकि संसारमें पुनरागमन तभी संभव है जब मुक्तमें कोई विकार शेष रह गया हो जिसके कारण उसे संसारमें आना पड़े। किन्तु यदि कोई विकार शेष रह जाये तो मुक्ति ही नहीं हो सकती अतः मुक्त जीव निरंजन निर्विकार होते हैं इसलिए फिर कभी लौटकर नहीं आते।

क्षणिकवादी बौद्ध सबको क्षणिक मानता है। अतः कहा है कि मुक्तावस्था क्षणिक नहीं है नित्य है।

यौग मतावलम्बी मुक्तावस्थामें जीवके सभी विशेष गुणोंका नाश मानते हैं और कहते है कि बुद्धि आदि विशेष गुणोंका नाश हो जाना ही मुक्ति है। किन्तु जैन दर्शनका कहना है कि सिद्धोंमें स्वभाविक आठ गुण सदा वर्तमान रहते हैं। वे गुण हैं–सम्यक्त्व, दर्शन, वीर्य, अगुरुलघुत्व, अवगाहनत्व, सूक्ष्मत्व और अव्याबाधत्व। आठों कर्मोंके विनाश होनेसे ये आठों गुण प्रकट होते हैं।

ईश्वरवादी मानते हैं कि ईश्वर नित्य मुक्त हो कर भी सृष्टिकी रचना करता है उसे बनाता बिगाड़ता है, जीवोंको उनके कर्मोंका फल देता है आदि। जैन दर्शनका कहना है कि जो मुक्त हो गया वह तो कृतकृत्य हो गया; उसे कुछ करना शेष नहीं। अतः वह न तो किसीको बनाता है न किसीको बिगाड़ता है और न किसीको सुख-दुख देता है। यह सृष्टि तो अनादिकालसे ऐसी ही चली आती है क्योंकि सत्का विनाश नहीं होता और असत्की उत्पत्ति नहीं होती। अतः वस्तु स्वरूपके अनुसार द्रव्योंमे परिवर्तन हुआ करता है। उसीसे यह सब खेल चलता रहता है।

मण्डली मानता है कि जीव मुक्त हो जानेके बाद सदा ऊपरको गमन करता है वह कभी भी रुक नहीं सकता। किन्तु जैन दर्शनका कहना है कि मुक्त जीव लोकके अग्रभाग तक जा कर रुक जाता है। इस तरह सिद्ध परमेष्ठीका स्वरूप जानना चाहिये। कहा भी है—

णट्ठट्ठकम्म देहो लोयालोयस्स जाणओ दट्ठा।
पुरिसायारो अप्पा सिद्धो झाएह लोय सिहरत्थो ॥ ५१ ॥

—द्रव्यसंग्रह

जिन्होंने आठ कर्मोंको और शरीरको नष्ट कर दिया है और जो लोक तथा अलोकके ज्ञाता द्रष्टा हैं, लोकके शिखरपर विराजमान है उस पुरुषाकार आत्माको सिद्ध कहते हैं। उनका ध्यान करना चाहिये।

श्वे० आचारांग सूत्रमें कहा है—

'सव्वे सरा णिअट्टंति, तक्का जत्थ ण विज्जति, मती तत्थ ण गाहिता, ओए अप्पति ट्ठाणस्स खेयन्ने ॥ ३३० ॥'

'से ण दीहे, ण हस्से, ण वट्टे, ण तंसे, ण चउरंसे, ण परिमंडले, ण किण्हे, ण णीले, ण लोहिए, ण हालिद्दे, ण सुक्किले, ण सुरहिगंधे, ण दुरहिगंधे, ण तित्ते, ण कडुए, ण कसाते, ण अंबिले, ण महुरे, ण कक्खडे, ण मउए, ण गरुए, ण लहुए, ण सीए, ण उण्हे, ण णिद्धे, ण लुक्खे, ण काउ, ण रुहे, ण संगे, ण इत्थी, ण पुरिसे, ण अन्नहा, परिण्णे, सण्णे ॥ ३३१ ॥

उवमा ण विज्जति, अरुवी सत्ता, अपयस्स पयणत्थि ॥ ३३२ ॥

से ण सद्दे, ण रूवे, ण गंधे, ण रसे, ण फासे इच्चेतावंति त्ति बेमि ॥ ३३३ ॥

अर्थ— 'सिद्धकी अवस्था वर्णन करनेके लिए कोई भी शब्द समर्थ नहीं है। तर्कका उसमें प्रवेश नहीं है, मति वहाँ पहुंचती नहीं, वहाँ सब कर्मोंसे रहित ज्ञानमय आत्मा ही विराज-

मान है।' मुक्त जीव न दीर्घ है, न ह्रस्व है, न गोल है, न तिकोना है, न चौकार है, न मण्डलाकार है, न काला है, न नीला है, न लाल है, न पीला है, न सफेद है, न सुगन्ध वाला है, न दुर्गन्ध वाला है, न तीता है, न कड़ुआ है, न कसैला है, न खट्टा है, न मीठा है, न कठोर है, न सुकुमार है, न भारी है, न हल्का है, न ठंडा है, न गरम है, न स्निग्ध है, न रूक्ष है, न शरीर वाला है, न जन्म लेता है, न परिग्रही है, न स्त्री है, न पुरुष है, न नपुंसक है, केवल ज्ञाता द्रष्टा है,।

'मुक्त जीवकी कोई उपमा भी नहीं है। क्योंकि वह तो अरूपी है। उसकी कोई विशेष अवस्था भी नहीं है इसलिए शब्दसे उसे कहा नहीं जा सकता। केवल इतना ही जानते है कि मुक्तजीव न तो शब्द रूप है न रूपमय है न गन्धवाला है न रसवाला है और न स्पर्शवाला है।'

ऐसे सिद्धोंको जो भाव पूर्वक नमस्कार करता है वह भव-बन्धनसे छूट जाता है तथा उसे ज्ञानकी प्राप्ति होती है।

आचार्य परमेष्ठीका स्वरूप—

पाँच प्रकारके आचारको जो पालते है, उसका व्याख्यान करते हैं वे आचार्य कहलाते हैं। जैसा कि, श्वे० आवश्यक निर्युक्ति लिखा है—

पंचविहं आयारं आयरमाणा तहा पयासंता।
आयारं दंसंता आयरिया तेण वुच्चंति ॥ ६६४ ॥

अर्थात्—पाँच प्रकारके आचारका स्वयं आचरण कहते उसका प्रकाश करते हैं इसलिए उन्हें आचार्य कहते है।

आवश्यक चूर्णिमें विस्तारसे आचार्यका स्वरूप बतलाय जिसकी कुछ मुख्य बातें इस प्रकार हैं—

जो आचारमें कुशल हो, स्व-समय और पर-समयका जानकार हो, चित्तका हल्का न हो, क्षमाशील और जितेन्द्रिय हो, जिसे न जीवनकी तृष्णा हो और न मृत्युका भय हो, परीषहोंका जीतने वाला हो अहंकारसे अछूता हो, सत्कार, लाभ-अलाभ और सुख दुखमे समान हो, अपमानको सह सकने वाला हो, चपल न हो, संक्लिष्ट परिणामी न हो, प्रायश्चित्तमे दक्ष हो, मार्ग और कुमार्गको जानने वाला हो, अनुयोगका जानने वाला हो, नयोंका वेत्ता हो, कमलके पत्रकी तरह निर्लिप्त हो, वायुकी तरह अप्रतिहत गति वाला हो, पर्वतकी तरह निश्चल हो, समुद्रकी तरह गभीर हो, और कछुएकी तरह आत्म संवरण करने वाला हो, चन्द्रमाकी तरह सौम्य हो, सूर्यकी तरह तेजस्वी हो, जलकी तरह सबको शान्ति-दायक हो, आकाशकी तरह अपरिमित ज्ञानी हो, तीन दण्ड, तीन गारव और तीन शल्योंसे रहित हो, तीन गुप्तियोका पालक हो, चार विकथा और चार कषायोंका त्यागी हो, पांच समिति पाँच महाव्रत और पाँच प्रकारके चारित्रका धारक हो, छह कायोके जीवों पर दयालु हो सात प्रकारके भयोंसे मुक्त हो, आठों कर्मोंका भेद-न करने वाला हो, नौ प्रकारके ब्रह्मचर्यका पालक हो, श्रमणोंके दश प्रकारके धर्मोका ज्ञाता हो, बारह प्रकारके तपका आचरण करने वाला हो, द्वादशांग शास्त्रमे पारंगत हो, इत्यादि गुणोंसे जो युक्त हो वह आचार्य होता है।

दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदायोंमें आचार्यके ३६ गुण माने गये हैं। किन्तु संख्यामें समानता होते हुए भी नामोंमें अन्तर है श्वेताम्बर सम्प्रदायमें–५ महाव्रत, ५ आचार ५ समिति, ३ गुप्ति, पाँचों इन्द्रियोंका जय, नौ बाडसे युक्त विशुद्ध ब्रह्मचर्य और चार कषायोंका त्याग इस तरह ३६ गुण बतलाये हैं।

दिगम्बर सम्प्रदायमे—१२ प्रकारका तप, १० धर्म, ५ आचार, ६ आवश्यक, ३ गुप्ति इस प्रकार ३६ गुण बतलाये हैं।

यद्यपि दोनों सम्प्रदायोंमें आचार्यमें वे सभी गुण माने गये हैं जो एक दूसरेमें गिनाये गये है केवल गौणता और मुख्यताकी दृष्टिसे अन्तर पड़ गया है। जो इन गुणोंसे रहित हो वह आचार्य नहीं है।

आचार्य समस्त संघके अग्रणी होते हैं। वे नये साधुओंको दीक्षा देते हैं। अतः उनपर बड़ा भारी उत्तरदायित्व होता है। वे आंखोंकी तरह गच्छकी रक्षा करते है। शिष्योंको विधि पूर्वक उनके कृति कर्मोमे प्रेरित करते हैं, उन्हें आगम सूत्रोंका पाठ पढ़ाते है, तथा भव्य जीवोंको जिनेन्द्रदेव द्वारा प्रतिपादित मोक्ष मार्गका यथार्थ स्वरूप बतलाते हैं। ऐसे आचार्यको महानिशीथ[1] सूत्रमें तीर्थंकरके समान बतलाया है क्यो कि वह तीर्थंकरोंकी तरह ही सन्मार्गका प्रकाश करते हैं।

इसके विपरीत जो आचार्य जिन कथित मार्गोंका उल्लघंन करते हैं, स्वयं भ्रष्टाचारी होते हैं और भ्रष्टाचारी साधुओंकी उपेक्षा करते हैं—उनका नियंत्रण नहीं करते वे जिन मार्गके नाशक हैं और उन्हें जिनागममें कापुरुष कहा है। ऐसे भ्रष्टाचारी आचार्योंकी जो सेवा करते हैं वे अपने को संसार समुद्रमें डुबाते है।

क्यों कि यदि आचार्य ही प्रमादी हो जाय तो फिर किसका सहारा ले कर भव्य जीव अपना उद्धार कर सकते है। इससे पृथिवीकी तरह सहन शील मेरुकी तरह धर्ममे स्थिर और चन्द्रमाकी तरह सौम्य आचार्यको प्रशंसाके योग्य कहा है। प्राणियोको सिर्फ कर्म वगैरहकी शिक्षा देने वाले आचार्य भव-भवमें मिलते हैं किन्तु धर्मका आचरण करने और कराने वाले आचार्य कठिनतासे ही मिलते हैं। जो जिन भगवानके द्वारा उपदिष्ट निर्ग्रन्थ मार्गके अनुयायी हैं और मोक्ष-मार्गका उपदेश देते हैं।

---

* १—'तत्थ ण जे ते भावायरिया ते तित्थयरसमा चेव'।

वे ही वास्तवमे आचार्य हैं ऐसे आचार्य दीपकके समान अपना भी प्रकाश करते है और दूसरोंको भी प्रकाश देते हैं। इसीसे कहा—

दंसणणाण पहाणे वीरिय चारित्त वर तवायारे।
अप्पं परं च जुंजइ सो आयरियो णमो तस्स ॥

—बृहद्द्रव्यसंग्रह

अर्थात्—जो दर्शनाचार, ज्ञानाचार, वीर्याचार और तपाचारमें स्वयं अपनेको और दूसरोंको लगाता है उस आचार्यको नमस्कार हो।

उपाध्यायका स्वरूप—

जो गुरुके पास सम्पूर्ण शास्त्रका अभ्यास करके श्रुत समुद्रके पारगामी हुए हैं और जिनके पास बहुतसे साधु शास्त्राभ्यास करते है उन्हें उपाध्याय कहते हैं। श्वे० आवश्यक निर्युक्तिमें कहा है—

बारसंगो जिणक्खातो अज्झातो देसितो बुहेहिं
त उवइसति जम्हा उवज्झाया तेण वुच्चति ॥ १००१ ॥

अर्थात्—'जिनवर भगवानके द्वारा उपदिष्ट जो द्वादशांग श्रुत है, उसका वे उपदेश देते हैं, इसलिए उन्हें उपाध्याय कहते हैं।'

'उपाध्याय' शब्दकी व्युत्पत्तिके अनुसार भी जिसके पास जाकर पढ़ा जाता है उसे उपाध्याय कहते हैं और प्राकृत शैल के अनुसार उपाध्यायको 'उज्झ' और 'उवज्झय' कहते है अतः उसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार होगी—'उ' से उपयोग और 'झ' से ध्यान लेना चाहिये। अतः जो उपयोग पूर्वक ध्यान करता है वह उपाध्याय कहलाता है। दूसरे 'उवज्झय' शब्दमें 'उ' से उपयोग, 'व' से पापका वर्जन 'झ' से ध्यान और 'उ' से कर्मोंकी उदीरणा लेना चाहिये। अतः

जो उपयोग पूर्वक पापको छोड़ कर ध्यानके द्वारा कर्मोंका नाश करता है वह उपाध्याय कहा जाता है, जैसा कि कहा है—

उत्ति उवयोग करणे, झत्तिय झाणस्स होइ णिद्देसे।
एएण होइ उज्झा एसो अन्नोऽवि पज्जातो ॥ १००२ ॥
उत्ति उपयोग करणे व त्तिय पाव परिवज्जणे होइ।
झत्तिय झाणस्स कए उ त्तिय ओसक्कणा कम्मे ॥ १००३ ॥

—आ० नि०

दोनों सम्प्रदायोंमे उपाध्याय परमेष्ठीके २५ गुण बतलाये हैं। किन्तु संख्यामे समानता होते हुए भी नामोंमे अन्तर है। श्वेताम्बर सम्प्रदायमें—१२ अंगके पाठी, करण सित्तरी और चरण सित्तरी से युक्त, आठ प्रभावनाओंसे जैन मतका प्रकाश करनेवाला तथा तीन योगोको वशमे करनेवाला उपाध्याय परमेष्ठी होता है। अतः १२ + २ + ८ + ३ = २५ ये गुण उनके बतलाये हैं।

दिगम्बर परम्परामे—११ अंग और १४ पूर्वके पाठीको उपाध्याय कहा है। अतः ११ + १४ = २५ ये ही उनके गुण होते हैं।

श्वे० महानिशीथ सूत्रमे कहा है कि जिन्होने आस्रवके द्वारको भले प्रकारसे संवृत कर दिया है, मनोयोग, वचनयोग और काय योगको वशमें कर लिया है, स्वर, व्यञ्जन, बिन्दु, पद और अक्षरसे विशुद्ध द्वादशांग श्रुतज्ञानका जो चिन्तन करते हैं, अनुशरण करते है और ध्यान करते है वे उपाध्याय है। अतः उपाध्यायमे द्वादशांगके पठन पाठनकी ही मुख्यता बतलायी है। अतः वही उनके गुण हैं। इसीसे कहा है—

जो रयणत्तयजुत्तो णिच्चं धम्मोवदेसणे णिरदो।
सो उवज्झाओ अप्पा जदिवर वसहो णमो तस्स ॥ ५३ ॥

—द्रव्य सग्रह

अर्थात्—जो रत्नत्रयसे युक्त है, सदा धर्मका उपदेश देनेमें

तत्पर रहता है, मुनियोंमें श्रेष्ठ उस आत्माको उपाध्याय कहते हैं। उन्हें नमस्कार हो।

साधुका स्वरूप—

जो मोक्षके साधक व्यापारोंकी साधना करते हैं और सब प्राणियोंमे सम बुद्धि रखते हैं वे साधु परमेष्ठी हैं। जैसा कि श्वे० आवश्यक निर्युक्तिमे कहा है—

> निव्वाणसाहए जोगे, जम्हा साहेंति साहुणो।
> समा य सव्व भूएसु, तम्हा ते भाव साहुणो ॥१०१०॥

द्रव्यसंग्रहमें भी कहा है—

> दंसणणाणसमग्गं मग्गं मोक्खस्स जो हु चारित्तं।
> साधयदि णिच्चसुद्धं साहू स मुणी णमो तस्स ॥ ५४ ॥

जो सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान युक्त तथा मोक्षके मार्ग स्वरूप निर्दोष चरित्रकी सदा साधना करता है उस मुनिको साधु कहते हैं।

इससे स्पष्ट है कि मोक्ष मार्गकी साधना करनेवाला संयमी ही साधु कहा जाता है। ये साधु विषय सुखके सर्वथा त्यागी होते हैं, विशुद्ध चारित्रके धारी होते है, तात्त्विक गुणोंके साधक होते है और मोक्षके साधक जो कार्य हैं उनके करनेमे सदा तत्पर रहते है।

श्वेताम्बर सम्प्रदायमें साधुओंके २७ गुण बतलाए है—५ महाव्रत, ५ इन्द्रियोंका जय, ४ कषायोंसे निवृत्ति, इन १४के साथ-मन वचन और कायको वशमे रखे—इस तरह १७ हुए। १८-सच्चे भाव, १९-शास्त्रानुकूल आचरण, २०-योगकी सत्यता, २१-ज्ञान सम्पन्न, २२ दर्शन सम्पन्न, २३ चारित्र सम्पन्न २४ क्षमाशील,

२५ सदा विरक्त, २६ समभावसे परीषहोंका सहन और २७ समाधिपूर्वक मरण।

साधुके लिए और भी बहुतसे नियम बतलाये हैं जिनमेंसे कुछ इस प्रकार हैं—साधु अपने लिए बनाये गये आहारको ग्रहण न करे, मोलकी वस्तु न ले, एक घरसे नित्य आहार न ले, रात्रिको चारों ही प्रकारका आहार ग्रहण न करे, स्नान नहीं करे, सुगन्धित द्रव्य न सूंघे, फूल माला नहीं पहरे, पंखेसे हवा न करे, रात्रिको चारों ही प्रकारका आहार[1] पासमे न रखे, धातु पात्रमें भोजन नहीं करे, राजपिण्ड ग्रहण न करे, दानशालाका आहार नहीं ले, विना कारण शरीरका मर्दन नहीं करे, किसी भी सवारी पर नहीं बैठे, गृहस्थसे सुख साता नहीं पूछे, दर्पण वगैरहमे अपना मुँह न देखे, तास गंजफा वगैरह नहीं खेले, ज्योतिषीपनेका काम नहीं करे, छत्र धारण नहीं करे, वैद्यक नहीं करे, पैरमे कुछ भी नहीं पहिने, जिसके यहाँ पर ठहरे उसका आहार नहीं ले, पलंग वगैरह पर नहीं बैठे, वृद्धावस्था वगैरहके सिवाय गृहस्थके घरमे नहीं ठहरे, उबटन, हल्दी वगैरह न लगावे, गृहस्थकी वैयावृत्त न करे, रिश्तेदारी निकाल कर आहार न ले, अचित्त वस्तुका ही सेवन करे, दुःख होने पर गृहस्थकी शरण न ले, सिर डाढ़ी और मूछके बालोका लोच करे, विना कारण दस्तोंकी दवा न ले, विना कारण शोभाके लिए अञ्जन न लगावे, दातुन नहीं करे, कसरत नहीं करे, औषधि खा कर या मुखमें अंगुली डाल कर वमन नहीं करे, शरीरको सजावे नहीं, ।

दिगम्बर सम्प्रदायमें साधुके २८ मूलगुण बतलाये हैं जो इस प्रकार है—पाँच महाव्रत, पाँच समिति, पाँच इन्द्रियोंको जीतना, ६ आवश्यक, स्नानका त्याग, भूमि पर सोना, वस्त्र धारण नहीं करना, केशलोच, दिनमें एक बार भोजन, दाँतौन न करना, खड़े होकर आहार लेना।

पञ्चाध्यायी नामक ग्रन्थमें[1] साधुका स्वरूप बतलाते हुए कहा है—

'सम्यग्दर्शन पूर्वक चारित्र ही मोक्षका मार्ग है। उस चारित्रकी आत्मसिद्धिके लिए जो साधन करता है उसे साधु कहते हैं। यह साधु न तो कुछ कहता ही है और न किसी प्रकारका संकेत ही करता है। तथा मनसे भी कुछ-कुछ चिन्तन नहीं करता। अर्थात् अपने मन, वचन और काय पर उसका पूरा नियंत्रण होता है। वह केवल अपने शुद्ध आत्मामें लीन रहता है। उसकी अन्तरग और बाह्य वृत्तियाँ बिल्कुल शान्त होती ही हैं अतः वह तरंग रहित समुद्रके समान होता है। वह वैराग्यकी पराकाष्ठा पर पहुंचा हुआ होता है और तुरन्तके जन्मे हुए बालककी तरह निर्विकार और नग्न होता है। सदा दयामे तत्पर रहता है, अन्तरंग और बहिरंग मोहकी ग्रन्थियोंका भेदक होनेसे निर्ग्रन्थ कहलाता है। तपस्याके द्वारा कर्मोंकी गुणश्रेणी निर्जरा करता है, परीषह, उपसर्ग वगैरह उसका कुछ भी बिगाड़ नहीं सकते, कामका विजेता होता है शुद्ध शास्त्रोक्त विधिसे आहार ग्रहण करता है और सदा त्यागमे तत्पर रहता है। इस प्रकारके अनेक साधुजनोचित सद्गुणोंसे युक्त साधु ही कल्याणकी भावनासे नमस्कार करनेके योग्य है।'

उपसंहार—

सारांश यह है कि जो वीतराग, सर्वज्ञ और मोक्ष मार्गका नेता होता है वही सच्चा गुरु है। इस दृष्टिसे सच्चे गुरु तो अरिहंत और सिद्ध ही हैं किन्तु उनसे नीचे भी जो अल्पज्ञ उसी रूपके धारक होते हैं वे भी गुरु हैं गुरुका लक्षण उनमें भी वैसा ही पाया जाता है। अन्य संसारी जीवोंसे वे विशिष्ट होते हैं।

१—श्लोक ६६७—६७४

इसके सिवा भावी नैगम नयकी अपेक्षासे जो भविष्यमे सच्चा गुरु होनेवाला है वह उसीके तुल्य माना जाता है, क्योंकि जो गुण अरिहंतमे हैं उन्हींका एक देश आचार्य, उपाध्याय और सर्व साधुओंमे पाया जाता है। मिथ्यात्व कर्मका उपशम आदि हो जानेसे उनमें सम्यग्दर्शन होता ही है और चारित्र मोहनीय का क्षयोपशम होनेसे एक देश सम्यक् चारित्र भी रहता ही है। अतः उनमे मोहनीय कर्मके उदयका यथायोग्य अभाव होनेसे शुद्धता पायी जाती है। यह शुद्धता ही संवर और निर्जराका कारण है तथा क्रमसे मोक्ष प्राप्त करानेवाली भी है। अतः आत्माका यह शुद्ध भाव ही पूजनीय होता है। और जिसमे यह शुद्ध भाव होता है वही सच्चा गुरु है। वास्तवमें गुरुपनेका कारण दोषोंका अभाव है। जो निर्दोष है वही जगतका साक्षात्-कार करता है और वही मोक्ष मार्गका नेता होता है। अतः अल्पज्ञ होनेसे गुरुपनेमें कोई क्षति नहीं आती है। उसमें क्षति केवल मोहजन्य रागादि अशुद्ध भावोंसे आती है। शायद कोई कहे कि आचार्य, उपाध्याय और साधु परमेष्ठीमे ज्ञानावरण, दर्शनावरण और वीर्यान्तराय कर्म मौजूद हैं तब वह शुद्धता कैसे हो सकती है? इसका समाधान यह है कि यद्यपि उनमे तीनों घाति कर्म मौजूद है, किन्तु उनका बन्ध, सत्त्व, उदय और क्षय मोहनीय कर्मका अविनाभावी है। अर्थात् मोहनीय कर्मका बन्ध होनेपर उनका बन्ध होता है, मोहनीय कर्मका उदय होनेपर उनका उदय होता और मोहनीय कर्मका सत्त्व होने पर उनका सत्त्व रहता है। तथा मोहनीय कर्मके क्षय होते ही अन्तमुहूर्तके पश्चात् उनका क्षय हो जाता है। इसलिए तीन घाति कर्मोंके मौजूद होते हुए भी राग द्वेष और मोहका अभाव होनेसे आचार्य उपाध्याय और साधु गुरु हैं। ये तीनो ही मुनिवर विशिष्ट पदों पर होनेके कारण तीन रूप माने जाते है।

इन तीनोका उद्देश्य एक है, क्रिया एक है, बाह्य वेष भी एक है, बारह प्रकारका तप, पांच महाव्रत, तेरह प्रकारका चारित्र मूलगुण, उत्तरगुण, संयम समताभाव भी समान हैं, परिषह और उपसर्गोंको तीनों ही समान रूपसे सहन करते हैं। आहार वगैरह की विधि, चर्या और आसन वगैरह भी समान है। मोक्षका मार्गभूत सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र, भी अन्तरंग और बाहरमे समान है। ध्याता ध्यान, ध्येय, ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय, चार प्रकारकी आराधना और क्रोध वगैरहको जीतना भी समान है। सारांश यह है कि आध्यात्मिक और बाह्य दृष्टिसे उनमें कोई अन्तर नहीं है जो कुछ अन्तर है वह अपने अपने विशिष्ट पदो और तत्सम्बन्धी विशेषताओंके कारण है अत: तीनों ही पूज्य है—आराध्य हैं और नमस्करणीय हैं। अत :—

> असहाये सहायत्तं करेंति मे संजमं करेंतस्स।
> एएण कारणेण नमामऽहं सव्व साहूणं ॥१०१३॥

'इस संसारमे कोई भी किसीका सहायक नहीं है, फिर भी संयमकी साधना करनेमे हमे इनसे सहायता मिलती है इसलिए हम सब साधुओंको नमस्कार करते है।

संक्षेपमे नमस्कार मंत्रमे जिन्हे नमस्कार किया गया है उनका यह स्वरूप है। जो मनन करनेके लायक है क्यो कि उसको समझे विना नमस्कार मंत्रका महत्त्व और उच्च लक्ष्य दृष्टिमे नहीं आ सकता। और उसके दृष्टिमे आये विना सच्चे दिल और सच्ची लगनसे उनकी आराधना नही हो सकती। और सच्चे दिल तथा सच्ची लगनसे आरधना किये विना मनवांछित फलकी प्राप्ति नहीं हो सकती। अत जो चाहता है कि इस महा मंत्रकी आराधनाके द्वारा मेरी मनोवांछा पूर्ण हो उसे महामन्त्रके पवित्र उद्देश्यपर

पहले दृष्टि डालनी चाहिए। उसके बाद शास्त्रोक्त विधिसे उसकी आराधना करनी चाहिए।

प्रयोजन और फल—

शास्त्रकारोंने नमस्कार मन्त्रका प्रयोजन बतलाते हुए लिखा है कि इसके दो फल हैं—एक तात्कालिक फल और दूसरा कालान्तर-भावी फल। इसके करते ही ज्ञानावरण आदि कर्मका क्षय होता है और मंगलकी प्राप्ति होती है यह तो तात्कालिक फल है। कालान्तर-भावी फल भी इस लोक और परलोककी अपेक्षासे दो प्रकारका है। इसके करनेसे इस लोकमें अर्थ और कामकी प्राप्ति होती है, रोग दूर होता है ये सब इहलौकिक फल है। मुक्ति, स्वर्ग और सुकुल वगैरहकी प्राप्ति पारलौकिक फल हैं।

अब प्रश्न यह है कि यह फल मिलता कैसे है? क्या नमस्कारसे प्रसन्न हो कर स्वयं अर्हन्त और सिद्ध ये फल देते है? किन्तु ऐसा तो सम्भव नहीं है क्योंकि अर्हन्त और सिद्ध वीतराग होते हैं न वे किसीके नमस्कार करनेसे उसपर प्रसन्न होते है और न किसीके नमस्कार न करनेसे उसपर नाराज होते है, यदि हों तो वे वीतराग नहीं कहलांये गे?

इसका समाधान यह है कि नमस्कारका वास्तवमें मुख्य फल तो मोक्ष ही है। और मोक्ष आत्माकी ही अवस्था विशेष है जैसे कि जीवका चैतन्य धर्म। अतः उसे कोई दूसरा नहीं दे सकता, वह तो अपने ही प्रयत्न और पौरुषसे मिलता है। रहा आनुसङ्गिक फल स्वर्ग आदि। वह जीवको अपने अपने शुभाशुभ कर्मोंसे मिलता है। अतः उसका भी कोई दाता नहीं है। यदि ये जिन सिद्ध या कोई देव किसीसे रुष्ट हो कर उसका पुण्य छीन लें और पाप उसे दे दें, अथवा किसीसे प्रसन्न होकर उसे पुण्य सौंप

दे और पाप उससे ले लें तो किये कर्मके नाशका और विना किये कर्मकी प्राप्तिका प्रसंग उपस्थित हो जायगा। और इससे लोकमें गड़बड़ी पैदा हो जायगी। अतः सुख दुःख वगैरहका कारण अपना कर्म ही है बाह्य वस्तु उसमें निमित्त मात्र है। अतः वास्तवमें कोई किसीको कुछ नहीं देता है। ऐसी परिस्थितिमें 'वीतरागी जिन और सिद्ध नमस्कारका फल देते है' यह चर्चा ही बेकार है।

इसलिए नमस्कार मन्त्र न तो किसीको कुपित करनेके लिए जपा जाता है और न किसीको प्रसन्न करनेके लिए जपा जाता है। किन्तु अरिहंत आदिके गुणोका समादर करनेसे चित्त प्रसन्न होता है। उससे शुभ परिणाम होते है। शुभ परिणामोंसे धर्म होता है और धर्मसे अर्थ, काम, स्वर्ग वगैरहकी प्राप्ति होती है। अतः नमस्कार मन्त्रसे यथोक्त फलकी प्राप्ति होती है। सारांश यह है कि अपनेमें शुभ या अशुभ परिणाम करनेसे धर्म अथवा अधर्मकी प्राप्ति होती है अतः जो धर्मका इच्छुक है उसे चाहिये कि सदा ऐसा प्रयत्न करता रहे जिससे परिणाम शुभ ही रहे। जिन और सिद्ध वगैरहके समादरसे, नाम स्मरणसे, गुण कीर्तनसे अवश्य ही शुभ परिणाम होते है, जिनका फल अपरिमित। उसीके लिए यह प्रयत्न है।

नमस्कार मंत्रको जपनेकी विधि—

पहले लिख आये हैं कि जो पाठ करनेसे सिद्ध हो वह मन्त्र है अतः नमस्कार मन्त्रका जप और ध्यान किया जाता है। उसके जप करनेकी कई विधियाँ हैं जो व्यक्तिकी शक्ति और स्थिरतापर निर्भर है।

मन्त्रका जप या ध्यान करनेसे पहले कुछ आवश्यक बातोंपर दृष्टि होना आवश्यक है। सबसे प्रथम मन्त्रपर श्रद्धाका होना

जरूरी है। विना श्रद्धाके किया गया काम कभी सफल नहीं हो सकता। कहा भी है—

'विश्वासः फलदायकः' विश्वास ही फल देता है दूसरे जिस कार्यपर करनेवालेको श्रद्धा नहीं होती उसमें उसका मन नहीं लगता। और विना मन लगाये काम करनेसे कोई लाभ नहीं हो सकता। आजकल बहुत मनुष्योंको यह कहते हुए सुना जाता है कि हमने अमुक मन्त्र इतने वर्षोंतक जपा, कुछ लाभ नही हुआ। उनसे पूछा जाय कि मन्त्र जपते समय आपका मन कहां भटकता है? कुछ इसकी भी खबर है, तो चुप। इसीसे तो 'कल्याण मन्दिर' स्तोत्रमे कहा है—

> आकर्णितोऽपि महितोऽपि निरीक्षितोऽपि
> नून न चेतसि मया विधृतोऽसि भक्त्या।
> जातोऽस्मि तन जनबान्धव दुःखपात्र
> यस्मात् क्रियाः प्रतिफलन्ति न भावशून्याः॥

अर्थात्—हे भगवान! तुम्हारा उपदेश सुनकर भी, तुम्हारी पूजा करके भी और तुम्हें बार-बार देख कर भी अवश्य ही मैंने तुम्हें भक्तिपूर्वक अपने हृदयमें स्थापित नहीं किया। इसीसे मैं दुःखोंका पात्र बना; क्योंकि विना भावके की गयी क्रियाएं कभी भी फलदायक नहीं होती।

अतः श्रद्धापूर्वक मनको लगाना सबसे प्रथम कर्तव्य है। दूसरे मंत्रका उच्चारण विधिपूर्वक और शुद्ध होना चाहिये। हमारा अपना अनुभव है कि अधिकांश स्त्री पुरुप नमस्कार मन्त्रका शुद्ध उच्चारण करना नहीं जानते। कुछ शब्द खा जाते है, कुछ मात्रा खा जाते हैं और कुछ भाई कुछका कुछ बोल जाते है। जो शुद्ध उच्चारण करना जानते हैं वे भी इतनी जल्दी-जल्दी पाठ करते है कि कुछ शब्द मुहके मुँहमे रह जाते है। ऐसे अशुद्ध पाठसे या जल्दी-घास काटनेकी तरह पाठ करनेसे कैसे फलकी प्राप्ति हो सकती?

हमारे पूर्वाचार्योंने तो स्पष्ट और शुद्ध उच्चारणके लिए तरह-तरहकी बातें स्पष्ट कर दी है-जैसे नवकार मंत्रमें पदसंख्या नौ, विराम आठ, गुरुवर्ण ७, लघुवर्ण ६१ और समस्त वर्ण ६८ बतलाये हैं। इसी तरह नमस्कार मंत्रमे पद संख्या ५ विराम ४ और समस्त वर्ण ३५ बतलाये है। इतना ही नहीं किन्तु यह भी बतलाया है कि नमस्कार मंत्रका उच्चारण कितने श्वासोच्छ्वास कालमें होना चाहिये और किस पदके उच्चारणमें कितना काल लगाना चाहिये ये सब बातें इसीलिए बतलायी हैं कि जप करने वाले असावधानता या जल्दीमें अशुद्ध पाठ करनेसे विरत रहें। महानिशीथ सूत्रमें तो विना उपधान किये नवकार मंत्रके जपनेका निषेध किया है। उपधानकी विधिका सार इस प्रकार है—शुभ तिथि, शुभ नक्षत्र और शुभ मुहूर्तमें निःशङ्क होकर जब वैराग्यकी प्रबल तरंगोंसे शुभ परिणाम पूर्वक हृदय भक्तिसे भरा हो, तो अत्यन्त आदरके साथ उपवास पूर्वक चैत्यालयमें जन्तु रहित स्थानमें जाय। उस समय भक्तिसे सारा शरीर रोमांचित हो, नेत्र प्रसन्न हो, दृष्टि स्थिर हो, अन्तः करण स्थिर निर्मल और दृढ़ हो। पृथिवी पर जानुके सहारे बैठकर दोनों हाथोंकी अंजलि बनाकर मस्तकसे लगावे। और श्री ऋषभ देव आदि तीर्थङ्करोंकी प्रतिमा पर दृष्टि स्थिर करके उसीमें अपने मनको रमा दे। फिर भयानक संसार समुद्रसे उतारनेके लिए यान स्वरूप श्री पञ्च मंगल महाश्रुत-स्कन्ध (नमस्कार मन्त्र) के प्रथम पद 'णमो अरिहंताणं' का जप करे। इसी विधिसे दूसरे दिन 'णमो सिद्धाणं' का जप करे, तीसरे दिन 'णमो आइरियाणं' का जप करे, चौथे दिन 'णमो उवज्झायाणं' का जप करे, पांचवें दिन 'णमो लोए सव्वसाहूण' का जप करे। फिर इसी विधिसे छठे, सातवें और आठवें दिन मंत्रकी चूलिका 'ऐसो पंचणमुक्कारो, आदिका पाठ करे। इस प्रकार इस महाश्रु-

सस्कन्धको स्वर, वर्ण, बिन्दु आदिकी शुद्धतापूर्वक पूर्वानुपूर्वी, पश्चादानुपूर्वी और अनानुपूर्वीसे पाठ करना चाहिये।' इत्यादि

इस उपधान विधिको सुनकर गौतमने भगवान् महावीरसे प्रश्न किया—'भगवन ! यह विधि तो बड़ी कठिन है। इसे कैसे किया जा सकता है। तो भगवानने उत्तर दिया गौतम ! जो विना इस उपधानके मंत्रका जाप करेगा, पढ़ेगा, पढ़ावेगा, अनुमोदना करेगा, आदि उसको बड़ी आसातना लगेगी वह गुरुजनों आदिको लज्जित करेगा'।

इस तरह महानिशीथ सूत्रमे उपधानकी बड़ी कठोर विधि बतलायी है और उसके विना नमस्कार मत्रके उच्चारण तकका निषेध किया है। ऐसी स्थितिमे जो लोग उसे अशुद्धतापूर्वक, विना मनोयोगके जल्दी-जल्दी जपते है, उनको उससे फल प्राप्ति या मंत्र सिद्धि कैसे हो सकती है ?

अतः स्थिर चित्तसे मन वचन और कायको एकाग्र करके, निराकुल होकर, किसी, शान्त-स्थानमे जहां कोई भयका कारण न हो, सुखासनसे बैठ कर या खड़े होकर मन्त्रका जाप करना चाहिये। जापकी संख्या बतानेके लिए कोई आधार होना जरूरी है जिससे यह मालूम हो सके कि कितनी बार मत्रका जाप हुआ। इसके लिए सबसे सरल और साधा उपाय माला है। मालाके मणियोंमें जाप करनेसे यह पता चल जाता है कि कितनी बार जप हुआ। माला सूतकी, चन्दनकी, मूंगेकी या अन्य कीमती मणियोकी अपनी शक्तिके अनुसार ली जा सकती है।

श्वे० ग्रन्थ आचारदिनकरमे तो मालाकी प्रतिष्ठा करानेका भी विधान है और प्रतिष्ठित मालासे जाप करना उचित बतलाया है। माला साफ सुथरी रहे इसका ध्यान रखना आवश्यक है। गन्दी मालासे मनको विक्षोभ होता है। जब जाप करना है तो जिस मालापर जाप हो वह तो साफ सुथरी होनी ही चाहिए।

एकीभाव स्तोत्रमें लिखा है—

प्रापद्दैवं तव नुतिपदं जीवकेनोपदिष्टैः
पापाचारी मरणसमये सारमेयोऽपि सौख्यम्।
कः संदेहो यदुपलभते वासवश्री प्रभुत्वं
जल्पञ्जाप्यैर्मणिभिरमलैस्त्वन्नमस्कारचक्रम्॥१२॥

अर्थात्—'हे जिनेन्द्र ! मरते समय जीवकके द्वारा दिये गये आपके नमस्कार पदोंसे पापी कुत्तेने भी देवगतिके सुखको प्राप्त कर लिया। ऐसी स्थितिमें निर्मल मणियोंके द्वारा आपके नमस्कार मन्त्रका जप करनेवाला यदि इन्द्र पदको प्राप्त कर लेता है। तो इसमें सन्देह ही क्या है ?

अतः माला मणिमुक्ता की न हो तो साफ सुथरी अवश्य होनी चाहिए। जाप करते समय माला हाथमें रखनेकी भी एक निश्चित विधि है। मालाको दाहिने हाथके अंगूठे पर रखना चाहिए। और दाहिना हाथ हृदयके पास रखना चाहिए। माला इतनी लम्बी न हो कि फेरते समय दाहिने हाथके अंगूठे पर लटकानेपर नाभिके नीचे तक पहुँचे। जो मनुष्य अपने घुटने पर या पावपर या पलोटीमें हाथ रखकर माला फेरते हैं वह भूल करते हैं।

शुभकार्यके लिए सफेद माला होनी चाहिए और कष्ट निवारण लिए लाल रंगकी माला अच्छी बतलायी गयी है। तथा जो मोक्षाभिलाषी हैं उन्हें अंगूठेपर रखी हुई मालाको अगूठेके पासवाली अंगुलीकी सहायतासे फेरना चाहिए। जो किसी शुभ कामनाकी पूर्तिके लिए जप करते हों उन्हें बीचकी अंगुलीसे माला फेरनी चाहिए। जो क्लेश आदि दूर करना चाहे वे बीचकी अंगुलीके पासवाली तर्जनी अंगुलीसे माला फेरे।

जो लोग मालाके बजाय अपने हाथकी अंगुलियोंपर ही

जाप करना चाहते हो वे उन पर भी जाप कर सकते हैं। इस तरहसे जाप करनेको आवर्त कहते हैं। आवर्तके अनेक प्रकार है उन सबको यहाँ लिखना शक्य नहीं है।

यह पहले लिख आये है कि नमस्कार मन्त्रका स्मरण मनोयोग पूर्वक होना चाहिए। अतः उस समय मनका एकाग्र होना आवश्यक है। मनको एकाग्र रखनेके लिए भी आचार्योंने अनेक उपाय बतलाये हैं। उनमेसे सबसे सरल उपाय तो अनानुपूर्वी है। इसमें एकसे लेकर पाच तकके अंक आगे पीछे ऊपर नीचे व्यक्तिक्रमसे लिखे होते हैं और जहाँ एकका अंक होता है वहाँ 'णमो अरिहंताणं' जहाँ दो का अंक हो वहाँ 'णमो सिद्धाणं' जहाँ तीनका अंक हो वहाँ 'णमो आइरियाणं' इसप्रकार पढ़ना चाहिए। अंकोको उलट सुलट कर रखे होनेके कारण जाप करते समय मन इधर उधर नहीं भटकता। भटकनेसे गल्ती पाठ होनेका भय रहता है। मनको एकाग्र रखनेकी दृष्टिसे उत्तम प्रकार नीचे दिया जाता है।

जाप करनेवाला मनुष्य अपने मनमे एक आठ पांखुड़ीके कमलकी कल्पना करे। उसके बीचमे एक कर्णिका हो। फिर कर्णिका तथा प्रत्येक पांखुड़ीपर पॉच-पॉच किरणोंके बारह बारह तारोंकी कल्पना करे ये सब तारे एक सौ आठ हो जायेंगे। फिर कर्णिकासे प्रारम्भ करके क्रमसे सब तारोंपर नमस्कार मन्त्रका जाप करे। इसमें चित्तकी विशेष एकाग्रता होना आवश्यक है। जरा भी चूकनेसे सब गड़बड़ पड़ जाता है। अतः ध्यानका अभ्यास होना आवश्यक है और उसके लिए इस तरहका जाप एक अच्छा उपाय है।

श्वेताम्बराचार्य श्रीपादलिप्त कृत प्रतिष्ठाकल्प पद्धतिमें लिखा है कि जप तीन प्रकारसे किया जाता है-प्रथम मानस, दूसरा उपांशु, तीसरा भाष्य। जो जप मन ही मनमे किया जाता है उसे मानस कहते हैं। उपांशु उसे कहते हैं जो अन्तर्जल्प रूप हो और जिसे

कोई सुन न सके। इसमे मंत्रके शब्द मुखसे बाहर नहीं निकलते और कण्ठ स्थानमे ही गूंजते रहते हैं। मंत्रको मुंहसे बोलते हुए जपनेको भाष्य कहते हैं। इन तीनोमे सबसे उत्तम मानस जप है, मानस जपसे नीचे उपांशु है और उपांशुसे निकृष्ट भाष्य जप है। इसीसे प्रारम्भमे भाष्यजप किया जाता है, मत्रोको मुखसे बोलकर जपनेसे जप करने वालेका मन उधर लग जाता है। उसके पश्चात् उपांशु जपकी ओर बढ़ना चाहिये अर्थात् मन्त्रोको मुखसे न बोलकर कण्ठमे ही उच्चारण करना चाहिये। इसके पश्चात् मानस जप तो सर्व श्रेष्ठ है ही। इसमे जपका स्थान कण्ठ देश भी न होकर हृदय देश होता है, हृदयमे ही मंत्रका चिन्तन चलता रहता है। यह मानस जप ही अभ्यास बढ़ने पर ध्यानका रूप ले लेता है। इसीसे शास्त्रकारोने लिखा है कि वाचनिक जपसे यदि सौ गुणा पुण्य होता है तो मानस जपसे हजार गुणा पुण्य होता है। हृदय देशमे एक खिले हुए आठ पाखुडीके कमलकी स्थापना करके मनके साथ प्राणवायुको अन्दर स्थिर करके पञ्च नमस्कार मत्रका चिन्तन करनेको मानस जप कहते है। मानस जपके लिये हृदयमे कमलका आकार चिन्तन किया जाता है जैसा कि पहले कहा है। एक 'णमो अरिहणताण णमो सिद्धाण' के अन्तमे, फिर 'णमो आइरियाण णमो उवज्झायाण' के अन्तमे और तीसरा णमो लोए सव्वसाहूण' के अन्तमे, इस तरह तीन उच्छ्वास लिये जाते है और तीन उच्छ्वासोमे एकबार जप होता है। नौ बार जप करनेमे २७ उच्छ्वास होते हैं। इस रीति से नौ बार करनेपर चिर सचित पाप भी नष्ट हो जाते है।

पञ्चपरमेष्ठीके नमस्काररूप कुछ अन्य मंत्र

श्री ज्ञानार्णवमे पञ्चपरमेष्ठीके नमस्काररूप मत्रोंके ध्यानकी विधि तथा फल विस्तारसे बतलाया है। वह यहां दिया जाता है—

निर्मल चन्द्रमा की कान्तिके समान आठ पत्रोके एक कमल-का हृदय देशमे चिन्तन करे। उस कमलकी कर्णिकापर 'णमो अरिहंताणं' सात अक्षरोके इस मत्रका चिन्तन करे और उस कर्णिकासे लगे हुए आठ पत्रोमेसे चारो दिशाओके चार पत्रो-पर 'णमो सिद्धाण, णमो आइरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूण, इन चार मंत्रपदोका चिन्तन करे और विदिशाओके चार पत्रोपर 'सम्यग्दर्शनाय नमः, सम्यग्ज्ञानाय नमः, सम्यक्चारित्राय नमः, सम्यक् तपसे नमः, इन चार मत्रोका चिन्तन करे। इस प्रकार कमलके आठ पत्र और उसकी एक कर्णिकापर उक्त नौ मन्त्रोको स्थापित करके उनका चिन्तन करना चाहिये। ज्ञानार्णवमे इसका बड़ा माहात्म्य बतलाया है। लिखा है कि जिन योगियोने इस लोकमे मुक्ति प्राप्त की उन्होने इस महामन्त्र के आराधनके द्वारा ही प्राप्ति की, इसी मन्त्र के प्रभावसे पापी जीव शुद्ध होते है और इसी मंत्रके प्रभावसे बुद्धिमान मनुष्य संसारके दु.खोसे छुटकारा पाते है। हजारो पाप करके और सैकड़ो जीवोको मारकर तिर्यञ्च भी इस महामन्त्रकी आराधनाके द्वारा स्वर्गको प्राप्त हुए। जो मुनि मन वचन कायको शुद्ध करके एक सौ आठ बार उक्त मन्त्रका चिन्तवन करता है वह एक उपवासके फलको प्राप्त करता है।

पञ्चपरमेष्ठियोके नामोको लिये हुए तथा पञ्च नमस्कार मन्त्रसे उत्पन्न दूसरा मन्त्र सोलह अक्षरोका है-'अर्हत् सिद्धा-चार्योपाध्याय सर्वसाधुभ्यो नम.। जो एकाग्रमन होकर दो सौ बार इस मन्त्रका जप करता है उसे एक उपवासका फल प्राप्त होता है।

तीसरा मन्त्र छै अक्षरोका है-'अरिहन्त सिद्ध'। इसका तीन सौ बार जप करनेसे एक उपवासका फल होता है। चौथा मन्त्र है-'अरहंत'। चार अक्षरोके इस मंत्रका चार सौ बार जप

करनेसे एक उपवासका फल प्राप्त होता है। पांचवां मन्त्र है- 'सिद्ध'। यह मत्र द्वादशांग वाणीका सारभूत है, मोक्ष देनेवाला है और संसारके समस्त क्लेशोंका नाश करनेवाला है।

छठा मन्त्र है-'ओं ह्रॉं ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा नम।' इस मन्त्रका निरन्तर अभ्यास करनेसे मनको वशमे रखनेवाला मुनि ससार बन्धनको शीघ्र ही काट डालता है।

इसी तरह पञ्च नमस्कारके पदों वगैरहको लेकर ऋद्धि सिद्धि दायक अनेक मंत्र हैं, जिनके ध्यान से सासांरिक दुःखोसे छुटकारा मिलता है।

जैनाचार और णमोकार मंत्र–

जैन आचार श्रावक और मुनिके भेदसे दो प्रकारका है। आचार शास्त्रके ग्रन्थोके अवलोकनसे प्रकट होता है कि जैन आचारमे णमोकार मत्र छाया हुआ है। सबसे प्रथम श्रावक-के आचारको ले। जब कोई अजैन जैनधर्म स्वीकार करना चाहता है तो श्रावक के व्रत धारण करनेके लिये सबसे प्रथम उसे अपराजित महामन्त्र (नमस्कारमन्त्र) ही प्रदान किया जाता है। नमस्कार मन्त्रको अपनानेके पश्चात् ही उसे श्रावक की दीक्षा दी जाती है। आदि पुराणमे लिखा है कि जिनालयकी पवित्र रंग भूमिमे अष्टदल कमल मांडे अथवा गोल समवसरणका मडल मांडे। यह मण्डल चिकने चूर्णसे अथवा चन्दन घिसकर उससे बनावें। उसके पश्चात् उसकी पूजन की जानी चाहिये। आचार्य जिन दीक्षा लेनेवालेको जिनेन्द्रके सामने बैठावें और उसके मस्तकको स्पर्श करते हुए कहे कि यह तेरी श्रावक दीक्षा है। तथा मस्तकको पच मुष्टि विधानके अनुसार स्पर्श करके 'तू पवित्र हो गया, दीक्षा ले' ऐसा कहकर आशीर्वाद देवें। उसके

बाद सबसे पहले उसे णमोकार मन्त्र देवें और कहें कि यह मंत्र तुझे सब पापोंसे बचावे। आदि।

श्रावकाचारमे लिखा है कि जब श्रावक सोकर उठे तो उठते ही उसे पञ्चनमस्कारमन्त्र पढ़ना चाहिए। उसके पढ़नेसे अनेक विघ्नबाधाएँ तो दूर होती ही है, मनको भी शान्ति मिलती है। इसी तरह रात्रि को सोनेसे पहले नमस्कार मत्रको नौ बार जपनेसे दुःस्वप्न नहीं आते, निद्रा अच्छी तरहसे आती है और मन शान्त रहता है। जब गृहस्थ शुद्ध होकर देव दर्शन करता है तो सबसे प्रथम नमस्कार मत्रको ही पढ़ता है। इसी तरह जब वह पूजन करता है तो प्रारम्भमे नमस्कार मन्त्र पढ़कर उसीकी स्थापना करता है उसके पश्चात् पूजा प्रारम्भ करता है जप या सामायिकमे भी नमस्कार मन्त्र का ही जप या ध्यान किया जाता है। सारांश यह है कि श्रावक की प्रत्येक शुभ क्रियाके आदिमें नमस्कार मंत्रका उपयोग होता है। अब मुनि-आचार का लीजिये।

मुनि के २८ मूलगुणों मे छै आवश्यक बतलाए है—सामायिक, चतुर्विंशतिस्तव, बन्दना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान और कायोत्सर्ग। पीड़ित अवस्थामे भी मुनि को ये छै कर्म प्रतिदिन अवश्य करने होते हैं इसीसे इन्हे षडावश्यक कहते है। नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावके भेदसे सामायिकके छै भेद है। सामायिकका मतलब है—समता या साम्यभाव। मेरा नाम कोई आदरसे ले तो मै उससे राग नहीं करूँगा और आदरसे न ले तो द्वेष नहीं करूँगा, यह नाम सामायिक है। यह मूर्ति जिस अर्हद्रूपका स्मरण कराती है, मै उस अर्हद्रूप नहीं हूँ, तब इस मूर्तिरूप तो मै कैसे हो सकता हूँ, अतः मेरा मूर्तिमे भी साम्यभाव है। यह स्थापना सामायिक है। स्वद्रव्यकी तरह परद्रव्यमे भी साम्यभाव रखनेको द्रव्यसामायिक कहते हैं। नगर और बनमें

साम्यभाव रखनेको, अर्थात् नगरसे प्रेम नहीं रखने और बनसे उद्विग्न न होनेको क्षेत्र सामायिक कहते हैं। ग्रीष्म वर्षा आदि ऋतुओंमें साम्यभाव धारण करनेको काल सामायिक कहते है। जीवन, मरण, लाभ, हानि, संयोग, वियोग सुख-दुःख और स्वजन परजनमें साम्यभाव रखनेका नाम भाव सामायिक है। इस प्रकार सामायिकके छै भेद है। कहा है कि सामायिक करते हुए श्रावक भी श्रमण (मुनि) के तुल्य हो जाता है, अतः बार-बार सामायिक करना उचित है। यह बतलानेकी आवश्यकता नहीं है कि सामायिकमें नमस्कार मन्त्रका चिन्तन किया जाता है।

ऋषभ आदि तीर्थङ्करोंका स्तवन करना चतुर्विंशतिस्तव है। इसके भी नाम, स्थापना, द्रव्य क्षेत्र, काल और भावकी अपेक्षा छै भेद है। एक हजार आठ सार्थक नामसे भगवानका स्तवन करना नामस्तव है। जिनेन्द्रकी कृत्रिम अथवा अकृत्रिम प्रतिमाओंका स्तवन करना स्थापना स्तव है। शरीर, चिन्ह, वर्ण, अतिशय, ऊँचाई और माता पिता आदिके कथन द्वारा जिनेन्द्रका स्तवन करना द्रव्यस्तव है। पवित्र कल्याणक क्षेत्रोंके वर्णनके द्वारा स्तवन करना क्षेत्रस्तव है। गर्भावतार, जन्म, दीक्षा, आदिके कालके कथन द्वारा जिनेन्द्रका स्तवन करना कालस्तव है। ये पाँचो स्तव व्यवहार दृष्टिसे स्तव है। और जिनेन्द्र देवके असाधारण आत्मिक गुणोंका वर्णन करना भाव स्तव है। यह निश्चय दृष्टिसे स्तव है।

शुद्ध भावोंसे किसी एक पूज्य तीर्थङ्कर वगैरहकी विनय करनेको बन्दना कहते है। निन्दा, आलोचना और गर्हाके द्वारा मन वचन कायसे कषायपूर्वक किये गये पापोंका शोधन करनेका नाम प्रतिक्रमण है। उसके सात भेद है--दिनसम्बन्धी प्रतिक्रमण, रात्रिसम्बन्धी प्रतिक्रमण, इसी तरह पाक्षिक, चातुर्मासिक, वार्षिक,

ईर्यापथिक और उत्तमार्थिक। अन्त समयमे समस्त दोषोंकी आलोचना पूर्वक चार प्रकारके आहारका त्याग करना उत्तमार्थ प्रतिक्रमण है। पापको रोकनेके लिए मनवचन कायसे रत्नत्रयके घातक द्रव्य क्षेत्र काल भाव वगैरहका त्याग करनेको प्रत्याख्यान कहते है।

दोनो पैरोके बीचमे चार अंगुलका अन्तर रखते हुए तथा दोनो हाथोको नीचे लटकाकर निश्चल खड़े होनेको कायोत्सर्ग कहते हैं। कायोत्सर्गका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल एक वर्ष है। इस कायोत्सर्गमे पञ्चनमस्कार मंत्रका चिन्तन किया जाता है। एक बारके चिन्तनमे तीन उच्छ्वास लगते हैं, यह पहले लिख आये हैं। अत: नौबार जप करनेमे २७ उच्छ्वास होते है। कहा है--

सप्तविंशतिरुच्छ्वासाः संसारोन्मूलनक्षमे।
सन्ति पञ्चनमस्कारे नवधा चिन्तिते सति ॥

अर्थात् ससारका उन्मूलन करनेमे समर्थ पञ्चनमस्कार मत्रका नौवार जाप करनेमे २७ उच्छ्वास होते है।

श्री अनगार धर्मामृतक आठवे अध्यायमे प्रत्येक प्रतिक्रमण सम्बन्धी कायोत्सर्गके उच्छ्वासोकी सख्या अलग अलग बताई है।

ये छहो आवश्यक और पांच परमेष्ठिनमस्कार, एक असही* और एक निसही, ये तेरह, साधुकी आवश्यक क्रियाये हैं। जैसा कि लिखा है—

* जिनालय वगैरहमे प्रवेश करते समय निसही और वहासे निकलते समय असही कहना साधुके लिये आवश्यक है।

आवश्यकानि षट् पञ्च परमेष्ठिनमस्क्रियाः।
निसही चासही साधोः क्रियाः कृत्यास्त्रयोदश ॥१३०॥

(अनगार धर्म०)

उक्त छै आवश्यक केवल साधुके लिये ही नहीं थे, गृहस्थके लिये भी उसकी पदमर्यादाके अनुसार आवश्यक थे। जबसे इनके स्थानमें देवपूजा, गुरुपासना, स्वाध्याय, संयम, तप और दान, श्रावकके ये षट्कर्म निर्धारित किये गये तबसे प्राचीन षट्कर्म गृहस्थाचारमेंसे एकदम लुप्त ही होगये। फिर भी सामायिक, वन्दना, स्तव तो गृहस्थोंमें किसी न किसी रूपमें प्रचलित भी हैं, किन्तु प्रतिक्रमणको तो गृहस्थ नाम भी भूल गये। प० आशाधर जीने अपने सागारधर्मामृतके छठे अध्यायमें श्रावककी दिनचर्या बतलाते हुए कहा है—

इत्यास्थायोत्थितस्तल्पाच्छुचिरेकायनोऽर्हतः।
निर्मायाष्टतयीमिष्टिं कृतिकर्म समाचरेत् ॥२॥

अर्थ—इस प्रकार प्रतिज्ञा करके श्रावक शय्यासे उठे और पवित्र होकर एकाग्रमनसे जिनन्द्रदेवकी अष्ट द्रव्यसे पूजा करे। फिर कृतिकर्म करे।

यह कृतिकर्म क्या वस्तु है, जो पूजाके बाद गृहस्थके लिए करना आवश्यक बतलाया है, उक्त श्लोकको पढ़कर यह उत्सुकता होना स्वाभाविक है। पं० आशाधर जी ने टिप्पणमें एक श्लोकके द्वारा कृतिकर्मका स्वरूप इस प्रकार बतलाया है—

योग्यकालासनस्थानमुद्रावर्तशिरोनतिः।
विनयेन यथाजातः कृतिकर्मामलं भजेत् ॥

योग्य कालमें, योग्य आसनसे, योग्य स्थानमे सामायिकके योग्य मुद्रा धारण करके चारो दिशाओं मे घूमकर तीन तीन आवर्तपूर्वक नमस्कार करे। तथा विनयपूर्वक मुनिके तुल्य परिग्रहका त्याग करके निर्मल कृतिकर्मको करे। अर्थात् विधिपूर्वक सामायिकको कृतिकम कहते है। सामायिकके अन्तमे आलोचना पूर्वक प्रतिक्रमण करना चाहिये। इस तरहसे कृतिकर्ममे तो छहों आवश्यक आ जाते है।

इस तरह मुनि और श्रावक सम्बन्धी क्रियाके साथ नमस्कार मन्त्र घनिष्ठरूपसे सम्बद्ध है।

जैन कथाएँ और नमस्कारमंत्र—

जैन पुराणों और कथाकोशो मे नमस्कार मन्त्रका माहात्म्य बतलाने वाली कथाएँ बहुतायतमे पाई जाती हैं। यदि उन सब कथाओ का सग्रह किया जाये तो एक बड़ा पुराण बन सकता है। यहाँ हम उनमेसे दो कथाओं को सक्षेपमे देते है।

पं० आशाधर जी ने अपने सागर धर्मामृतमे णमोकार मन्त्रका माहात्म्य दर्शाते हुए लिखा है।

> एकोऽप्यर्हन्नमस्कारो विशेच्चेन् मरणे मनः।
> सम्पाद्याभ्युदयं मुक्तिश्रियमुत्कयति द्रुतम् ॥
> स णमो अरहंताणमित्युच्चारणतत्परः।
> गोपः सुदर्शनीभूय सुभगाह्वः शिवं गतः ॥

अर्थात् मरण समयमे यदि अकेला एक अर्हन्त नमस्कार ही मनमे रम जाये तो वह अभ्युदयको प्राप्त कराकर शीघ्र ही मुक्ति-रूपीलक्ष्मीको उत्कंठित करता है। 'णमो अरहताण' केवल इतना

उच्चारण करनेमें तत्पर सुभगनामका ग्वाला सुदर्शन सेठ होकर मुक्तिको प्राप्त हुआ। इसकी कथा इस प्रकार है--

सुदर्शन सेठकी कथा

चम्पापुरीके सेठके यहां एक सुभग नामका ग्वाला नौकर था। एक दिन वह जंगलसे गौओंको लेकर घरको लौट रहा था। मार्गमें एक जैन मुनि ध्यान लगाकर बैठे थे। उस समय बड़ा शीत पड़ रहा था। नग्न मुनिको देखकर ग्वाला सोचने लगा-इस भीषण ठंडमें इनकी रात कैसे बीतेगी। इन्हें ठंडसे बचाने का कोई उपाय करना चाहिये। ऐसा विचार कर वह घर आया और जलानेके लिये लकड़ियां लेकर मुनिके पास पहुँचा। वहां उसने आग जलाकर रात भर मुनिको गर्मी पहुँचानेका प्रयत्न किया।

प्रातःकाल होने पर मुनिने उसे उपदेश दिया और कहा कि तू उठते बैठते चलते समय पहले 'णमो अरिहंताणं' इस मंत्रको पढ़ लिया कर। पश्चात् मुनि 'णमो अरिहंताणं' कहकर आकाशमें उड़ गये। यह देखकर उस ग्वालेकी उस मन्त्रपर बड़ी श्रद्धा हो गई और वह हर क्रियासे पहले 'णमो अरिहंताणं' जपने लगा।

एक दिन वह ग्वाला गाय चराने गया, और एक जंगलमें पड़कर सो गया। उसकी गाएँ नदीके उसपार चली गईं। जब उसकी आंख खुली तो वह पार जानेके लिये नदीमें कूदा। कूदते ही उसके पेटमें एक लकड़ी घुस गई और वह मरणासन्न हो गया। उसने तुरन्त 'णमो अरिहंताणं' पढ़ा और मरकर अपने सेठका पुत्र हुआ। उसका नाम सुदर्शन रखा गया। सुदर्शन बड़ा शील-

व्रती था। पटनासे उसने मुक्ति प्राप्त की। पुण्यास्रव कथाकोशमे उसकी अत्यन्त रोचक कथा पढ़ने योग्य है।

धरणेन्द्र पद्मावती की कथा

भगवान पार्श्वनाथ जब कुमार थे तो एक दिन गंगा नदीके किनारे घूमनेके लिये गये। वहां कुछ तापसी आग जलाकर तपस्या करते थे। पार्श्वनाथ घूमते घूमते उनके पास पहुँचे और अचानक ठिठककर रह गये। उनकी करुणापूर्ण दृष्टि आगमे जलती हुई एक लकड़ीपर ठहर गई जिसमे एक नागोका जोड़ा था। उन्होने तुरन्त उस लकड़ीको आगसे निकाला और लकड़ी चीर कर नाग नागनीको बचानेकी चेष्टा की। मगर आगने उन्हे अधमरा कर दिया था और उनके प्राण कण्ठगत थे। भगवानने तत्काल उनके कानमे णमोकार मंत्र दिया। जिसके प्रभावसे वे दोनो मरकर नाग कुमारोके अधिपति धरणेन्द्र और पद्मावती हुए और भगवान पार्श्वनाथकी दीनवत्सलता को जानकर उनके परमभक्त और सेवक हो गये।

उक्त घटनाके पश्चात् ही पार्श्वनाथ ने संसार को त्यागकर जिन दीक्षा ले ली। एक दिन वे अहिच्छेत्र (बरेली जिलेमे) के जगलमे ध्यानस्थ थे। उनके पूर्व जन्मका बैरी कमठ उधरसे कहीं जाता था। पार्श्वनाथ को देखते ही उसे अपने पूर्व जन्मका बैर याद आया और उसने उनपर घोर उपसर्ग किया। किन्तु पार्श्वनाथ अपने ध्यानसे विचलित नहीं हुए। इतनेमे ही धरणेन्द्र और पद्मावती अपने महान उपकारकपर विपत्ति जानकर उपस्थित हुए। और धरणेन्द्रने सर्पका रूप धारणकर ध्यानस्थ भगवानके ऊपर अपना विशाल फण फैला दिया। उपद्रवी देखते ही भाग गया और पार्श्वनाथ केवली होकर सम्मेद शिखरसे मुक्त हुये।

अनानुपूर्वी

अन्तमे हम उस [1]अनानुपूर्वी को देते हैं जिसकी पिछले पृष्ठमे चर्चा की गई है। इसमे २० मन्त्र है जिन्हें नम्बर के अनुसार क्रमसे पढ़ना चाहिये। इसमे णमोकारके पांचो पदोका व्यतिक्रमसे पढ़ना होता है इससे इसके जप करनेमे मन स्थिर रहता है। इसके पढ़नेका क्रम इस प्रकार है—जहां १ का अक हो वहां 'णमो अरिहंताणं' पढ़ना चाहिये। जहां २ का अंक हो वहां 'णमोसिद्धाणं' पढ़ना चाहिये, जहां ३ का अंक हो वहां 'णमो आइरियाणं' पढ़ना चाहिये। जहां ४ का अंक हो वहां 'णमो उवज्झायाणं' पढ़ना चाहिये। और जहां ५ का अक हो वहां 'णमो लोए सव्वसाहूणं' पढ़ना चाहिये।

१—अमृतसर के स्व० लाला मुसद्दीलाल जी जिनवाणीभक्त ने सन् १६२२ मे आनापूर्वी का प्रकाशन करके वितरण किया था। उसीपर से यह आनापूर्वी यहा दी गई है। उन्होने इसका नाम आनापूर्वी दिया था। असल मे तो अनानुपूर्वी नाम होना चाहिये क्योंकि इसमे अक्रम से जप किया जाता है। ले०।

१

१	२	३	४	५
२	१	३	४	५
१	३	२	४	५
३	१	२	४	५
२	३	१	४	५
३	२	१	४	५

२

१	२	४	३	५
२	१	४	३	५
१	४	२	३	५
४	१	२	३	५
२	४	१	३	५
४	२	१	३	५

३

१	३	४	२	५
३	१	४	२	५
१	४	३	२	५
४	१	३	२	५
३	४	१	२	५
४	३	१	२	५

४

२	३	४	१	५
३	२	४	१	५
२	४	३	१	५
४	२	३	१	५
३	४	२	१	५
४	३	२	१	५

५

१	२	३	५	४
२	१	३	५	४
१	३	२	५	४
३	१	२	५	४
२	३	१	५	४
३	२	१	५	४

६

१	२	५	३	४
२	१	५	३	४
१	५	२	३	४
५	१	२	३	४
२	५	१	३	४
५	२	१	३	४

७

१	३	५	२	४
३	१	५	२	४
१	५	३	२	४
५	१	३	२	४
३	५	१	२	४
५	३	१	२	४

८

२	३	५	१	४
३	२	५	१	४
२	५	३	१	४
५	२	३	१	४
३	५	२	१	४
५	३	२	१	४

९

१	२	४	५	३
२	१	४	५	३
१	४	२	५	३
४	१	२	५	३
२	४	१	५	३
४	२	१	५	३

११

१	४	५	२	३
४	१	५	२	३
१	५	४	२	३
५	१	४	२	३
४	५	१	२	३
५	४	१	२	३

१०

१	२	५	४	३
२	१	५	४	३
१	५	२	४	३
५	१	२	४	३
२	५	१	४	३
५	२	१	४	३

१२

२	४	५	१	३
४	२	५	१	३
२	५	४	१	३
५	२	४	१	३
४	५	२	१	३
५	४	२	१	३

१३

१	३	४	५	२
३	१	४	५	२
१	४	३	५	२
४	१	३	५	२
३	४	१	५	२
४	३	१	५	२

१५

१	४	५	३	२
४	१	५	३	२
१	५	४	३	२
५	१	४	३	२
४	५	१	३	२
५	४	१	३	२

१४

१	३	५	४	२
३	१	५	४	२
१	५	३	४	२
५	१	३	४	२
३	५	१	४	२
५	३	१	४	२

१६

३	४	५	१	२
४	३	५	१	२
३	५	४	१	२
५	३	४	१	२
४	५	३	१	२
५	४	३	१	२

१७

२	३	४	५	१
३	२	४	५	१
२	४	३	५	१
४	२	३	५	१
३	४	२	५	१
४	३	२	५	१

१९

२	४	५	३	१
४	२	५	३	१
२	५	४	३	१
५	२	४	३	१
४	५	२	३	१
५	४	२	३	१

१८

२	३	५	४	१
३	२	५	४	१
२	५	३	४	१
५	२	३	४	१
३	५	२	४	१
५	३	२	४	१

२०

३	४	५	२	१
४	३	५	२	१
३	५	४	२	१
५	३	४	२	१
४	५	३	२	१
५	४	३	२	१